संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 46
अंक : 8
नवम्बर 2013

अमृत कण

अदीक्षिताः ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
देवि दीक्षा विहीनस्य न सिद्धिर्नच सद्गति।।

अर्थात् बिना समर्थ गुरु से दीक्षा प्राप्त किए जो लोग जप, यज्ञ, पूजा आदि क्रियायें करते हैं उन्हें उन काम्य कर्मों में न तो सफलता मिलती है और न उनकी सद्गति होती है।

◆ ◆ ◆

गुरुं प्रकाशयेद् धीमान् मंत्रं नैव प्रकाशयेत्।
अप्रकाश प्रकाशाभ्यां क्षीयते सम्पदायुषः।।

अर्थात् गुरु प्रदत्त मंत्र को गुप्त रखने से ही मंत्र शक्ति सम्पन्न बनता है। प्रकाशित कर देने पर साधक श्रीहीन होकर अकाल काल कलवित हो जाता है।

◆ ◆ ◆

स्वाध्यायद्योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

जाप करो फिर ध्यानाभ्यास करो। मंत्र जाप एवं ध्यान योग के बारम्बार अभ्यास से परमात्मा प्रकट होते हैं-ईस्ट देव के दर्शन होते हैं।

◆ ◆ ◆

मच्चिता मद्गत प्राण बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्य तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

अर्थात्, मेरे भक्त जिनके मन और प्राण निरन्तर मुझ में ही अर्पित हैं, वे परस्पर एक दूसरे को मेरे दिव्य प्रभाव एवं कर्म–लीला को सुनाते हुए अत्यधिक प्रसन्न होते हैं और फिर मुझ वासुदेव में ही नित्य रमण करते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरत्तो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 46 नवम्बर – 2013 अंक : 8

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्
प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्।
एवं स देवो भगवान वरेण्यो
योनिस्वभवानधितिष्ठत्येकः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् । 5 । 4)

जिस प्रकार सूर्य अकेला ही समस्त दिशाओं को ऊपर-नीचे और इधर-उधर सब ओर से प्रकाशित करता हुआ देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार वह भगवान स्वामी बनने के योग्य सर्वश्रेष्ठ परमदेव परमेश्वर अकेला ही समस्त कारणस्वरूप अपनी समस्त शक्तियों पर आधिपत्य करता है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

-SIDDHYOG-

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	11
3.	महर्षि याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी संवाद – डॉ. विजय सिंह	13
4.	गोरखपुर में सवाई आश्रम का प्रतिनिधित्व – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	16
5.	योग–चिकित्सा – श्री गिरीश देव वर्मा	17
6.	योगेश्वर चरित्र माला – श्री मंगामल – श्री सद्गुरु देव जी	20
7.	आत्म चिन्तन – प्रो. ऋषिराम शर्मा	25
8.	योग–आसन – पादांगुष्ठासन	36
9.	अलुपुर में चन्दा – जगदीश राए बंसल	37
10.	अल्प व्यस्क बालक की प्राण रक्षा – केशवदेव उपाध्याय	38
11.	मैं ईश्वर हूँ – आशुतोष मिश्रा	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

श्री प्रभुजी की योग शिक्षा-पद्धति

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें गीता उपदेश के प्रकरण में भगवान श्री कृष्ण चन्द के द्वारा बताई योगियों के कोर्स का वर्णन किया था। उसी शिक्षा को आनन्दकन्द श्री प्रभु जी ने नैपाल हिमालय से आकर देनी आरम्भ की थी। जिन साधकों ने उस शिक्षा को पाकर विधिवत् योगाभ्यास किया वे तत्व विजयी पूर्ण सिद्ध होकर जंगलों में बैठ गये। मैंने एक दिन अपने बड़े गुरुभाई हरिहरानन्द के विषय में बताया था, उन्हें श्री प्रभु जी ने तत्व विजयी सिद्ध बनाकर नैपाल में शीशगिरी के पहाड़ पर अजर अमर बनाकर बिठा दिया। गीता का वह उपदेश मैंने तुम्हें बताया था –

भूमिरापो ऽनलोवायु: खमनोबुद्धिरेव च अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

इसमें भगवान ने अपनी आठ प्रकार की अपरा प्रकृति का वर्णन किया है। इनमें प्रथम पृथ्वी फिर जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार क्रम से बताये गये हैं। तुमने सृष्टि के क्रम का वर्णन पढ़ा होगा – **'तस्माद्वा एतस्माद्वात्मन: आकाश: सम्भूत:, आकाशाद् वायु:, वायोरग्नि:, अग्नेराप:, अद्भ्य: पृथ्वी'** यह सृष्टि का अवरोह क्रम है। सूक्ष्म से स्थूल की प्रक्रिया है। योगी जब साधना करता है तो आरोह क्रम से जाता है अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म में जाता है। पहले पृथ्वी फिर जलादि तत्वों का क्रमश: साक्षात्कार करता है। श्री प्रभु जी ने नैपाल से आकर जो हमें रास्ता बताया है ठीक यही रास्ता है। सर्वप्रथम मूलधार चक्र की साधना में योगी पृथ्वी तत्व पर अधिकार करता है। श्री प्रभु जी अपने बालकों को इस जमीन पर रहने वाले बड़े-बड़े सिद्ध, महासिद्धों को दिखा दिया करते थे। मूलाधार कमल पर ध्यान करने वाला व्यक्ति **'यं यं चिन्तयते कामम्। तं तं प्राप्नोति निश्चितम्'** के सिद्धान्तानुसार कामनाओं की सिद्धि पा लिया करता है। मूलाधार कमल में ध्यान के अभ्यास से इष्ट देव जब दीखने लग जाते हैं तो साधक की सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं वहाँ के अधिष्ठातृदेव में समाधि हो जाये तो गन्ध तन्मात्र का साक्षात्कार हो जाता है। उसे सर्वत्र **गन्धोऽयम्** की अनुभूति होती है। प्रभु जी की एक शिष्या हमारी एक गुरु बहिन अमृतसर की थी। उनका नाम था पैडो देवी। उसको गन्ध तन्मात्र का साक्षात्कार था। उसके शरीर से भी दिव्य गन्ध आने लगती थी। पैडो अपने निर्माण चित्त से सभी गुरु बहिनों के

घर–घर जाकर सुबह जल्दी उठा दिया करती थी। उनमें एक गुरु बहिन बड़ी जिद्ववाली थी। वह श्री प्रभु जी से शिकायत करती थी – प्रभु जी ! पैड़ों सब को ठीक समय पर उठा देती हैं किन्तु मुझे नहीं उठाती। श्री प्रभु जी ने कहा – पैड़ों! तू इसे भी उठा दिया कर। पैडो ने कहा – अच्छा! प्रभु जी मैं इसे भी उठा दिया करूँगी। दूसरे प्रातः पैड़ो निर्माण चित्त से उसे उठाने गई। वह उठी नहीं तो उसने जोर का चाँटा मार दिया। उसकी एक दाँत टूट गई। श्री प्रभु जी के पास आकर वह रोते हुए कहने लगी – प्रभु जी! इसने मुझे इतने जोर का चाँटा मारा है कि मेरी दाँत ही टूट गई है। पैड़ो के शरीर से सुगन्ध निकलती थी। वह जिधर से भी गुजरती थी लोग कहते थे यह देखो ! कितना इत्र फुलेल लगाया करती है। लोगों के इस तरह के शब्दों को सुनते–सुनते पैड़ो तंग आ गई। प्रभु जी से कहने लगी प्रभु जी ! लोग मेरी मजाक उड़ाते हैं आप यह सुगन्ध हटा दें। प्रभु जी ने कहा – अच्छा ! कल से यह गन्ध तेरे शरीर से नहीं आयेगा। अस्तु। पृथ्वी के बाद जल का समुद्र आता है स्वाधिष्ठान चक्र में योगी जल एवं रस तन्मात्र का साक्षात्कार – जो मणिपूरक चक्र का ध्यान करता है उसको दिव्य रूप का साक्षात्कार होता है। अनाहत में जाकर स्पर्श तन्मात्र का साक्षात्कार करता है अनाहत में ध्यान करने से दिव्य स्पर्श की अनुभूति होती है। स्पर्शतन्मात्र का साक्षात्कार होने पर **'स्पृशति चन्दमसमपि'** योगी चन्द्रमा को भी छू लेता है। विशुद्ध चक्र में आकाश का साक्षात्कार करता है, शब्द तन्मात्र का साक्षात्कार करता है।

इस प्रकार से योगी क्रम से मूलाधार आदि चक्रों का ध्यान करता हुआ गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द तन्मात्र का साक्षात्कार करता है। तन्मात्रों के अलग–अलग लोक हैं। उन–उन लोकों में एक ही तन्मात्रा की प्रधानता रहती है। जैसे शब्द तन्मात्र का लोक है वहाँ पर शब्द ही शब्द – नाद ही नाद सुनाई देते हैं। इसी प्रकार से स्पर्श, रूप, रस आदि तन्मात्राओं के न्यारे–न्यारे लोक हैं। जिस प्रकार से अमृतसर में पहले समय में नमक मण्डी में नमक ही नमक मिलता था, हींग मण्डी में हींग ही हींग मिलती थी। इसी प्रकार से तन्मात्र लोकों की बात है। किन्तु पंसारी की दुकान में नमक, हींग तथा सभी खाद्य पदार्थ मिल जाया करते हैं। इसी प्रकार से हमारा यह जो पृथ्वी लोक है इसमें सब कुछ थोड़े–थोड़े विद्यमान हैं। विचारानुगम समाधि में प्रभु जी अपने साधक बच्चों को स्वर्गादि लोक दिखा दिया करते थे। ताकि साधक के मन में भोगों की तृष्णा न रहे। देवता लोग साधक को इसी भूमिका में प्रलोभन दिया करते हैं। योग दर्शन में उस अवस्था में देवताओं के प्रलोभन देने का संकेत मिलता है। वहाँ पर साधक को अहंकार एवं प्रलोभन से बचने का उपदेश दिया है – **''स्थानित्यु–पनिमन्त्रणे सङगस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङगात्''** अर्थात् इस समाधि में

देवता लोग प्रलोभन दिया करते हैं। साधक को उनके प्रलोभन से दूर रहना चाहिए तथा अपनी स्थिति का अहंकार भी नहीं करना चाहिए। नारद मुनि की तरह काम विजय का अहंकार नहीं करना चाहिए। मैंने अपने एक बच्चे रमणीगिर का उदाहरण देकर तुम्हें समझाया था कि उसकी ऐसी स्थिति में देवता प्रलोभन देने लगे। हमने उसे इन दृश्यों को देखने से मना किया था। किन्तु अवहेलना के कारण उसका पतन हो गया। इस अवस्था से कोई–कोई गुरु भक्त ही आगे निकला करता है। विशुद्ध चक्र से आगे आज्ञा चक्र है। **'आज्ञा चक्रे ततो गुरु'** इसके अधिष्ठातृदेव गुरु होते हैं। इस चक्र में कमल की दो पंखुड़ियाँ हैं। एक पंखुड़ी पर मन का साक्षात्कार तथा दूसरी पर बुद्धि का साक्षात्कार योगी करता है। इससे आगे सहस्त्रार कमल है। यहाँ पर 'अस्मि' 'अस्मि' अहमेवास्मि, अस्मि तत्व का साक्षात्कार होता है। अस्मि तत्व का साक्षात्कार करने के बाद योगी 'ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा' की स्थिति के लिये प्रयत्नशील रहता है। 'ज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है।' योगी प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर के उन पर अधिकार प्राप्त कर ले। प्रकृति के पाँच तत्वों एवं तन्मात्राओं पर अधिकार हो जाता है। पृथ्वी तत्व पर अधिकार कर लेने पर पृथ्वी में जल की तरह डुबकी लगा सकता है। अग्नि तत्व पर अधिकार कर लेने पर आग्नेय शरीर बना लेता है उसे अग्नि से कोई भय नहीं होता, वायु एवं आकाशादि तत्वों पर अधिकार कर लेने पर स्वेच्छा से जहाँ चाहे विचरण कर सकता है। जल तत्व पर अधिकार कर लेने पर जल पर उसी प्रकार चल लेता है जैसे हम लोग पृथ्वी पर चलते हैं। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है – **''उदान जयात् जलपंककण्टकादिष्वसङग: उत्क्रान्तिश्च''** अर्थात् उदान वायु पर जय हो जाने पर योगी, जल पंक एवं कण्टक से निर्लेप रहता है। खेचरी से भी पानी पर पृथ्वी की तरह चल लेता है। मैं एक आप बीती घटना सुनाता हूँ श्री प्रभु जी मुझे और भाई नरसिंह मूर्ति को खेचरी का अभ्यास करा रहे थे। खेचरी में दोहन, चालन तथा छेदन क्रियायें करनी होती हैं, दोहन क्रिया में सौंठ या काली मिर्च का चूर्ण जीभ के दोनों ओर लगाकर जैसे दूध निकाला जाता है उस तरह से जीभ का दोहन किया जाता है। चालन क्रिया में जीभ को कपड़े से पकड़ करके धीरे–धीरे इधर–उधर खींचा जाता है। छेदन क्रिया में बाँस की ताड़ी से धीरे–धीरे जीभ के नीचे की तन्तु घिसी जाती है। श्री प्रभु जी ने अपने सामने ही छेदन भी थोड़ी–थोड़ी करा दी थी और अभ्यास का आदेश देकर स्वयं कनखल चले गये। उनके बिछोह में एक दो दिन मन कुछ ऐसा ही रहा। हमारा खेचरी का अभ्यास कम हो गया। ध्यानभ्यास का क्रम तो बराबर चल रहा था इसी बीच ध्यान में देखता हूँ कि मैं पानी पर चल रहा हूँ। कनखल से ही आवाज आई। श्री प्रभु जी बच्चों को दो शब्द कहा करते थे। एक तो कहते थे अन्यायी और दूसरा

कहते थे औतर! मायने उद्दण्डी। श्री प्रभु जी ने कहा – अन्यायी! तुमने खेचरी का अभ्यास छोड़ दिया। यदि बराबर करता रहता तो अब तक इसी प्रकार से पानी पर चल लेता।' इन वचनों को सुनकर के ध्यान से उठकर मैंने उतावलेपन में लोहे की ब्लेड से जीभ के नीचे की तन्तु को काट लिया। बस! फिर क्या था। मेरा मुख खून से भर गया। उस समय हमारे एक गुरु भाई रतन लाल ध्यान में बैठे हुए थे। श्री प्रभु जी ने उसे ध्यान में ही आज्ञा दी – चन्द्रमोहन को देखो। उसने अपनी जीभ काट ली है। तुम इस जड़ी को उखाड़ लाओ। (जड़ी ध्यान में दिखाई थी) और इसका रस इसके मुख में भर दो। नहीं तो यह गूंगा ही हो जायेगा। दूनियां वाले क्या कहेंगे कि योगियों के बच्चे गूंगे होते हैं''। भाई रतनलाल जी जड़ी उखाड़कर लाये और उसका रस मेरे मुख में भर दिया। दो तीन घण्टे में ही मैं बोलने लायक हो गया। जब मैं जीभ काट रहा था उसी समय प्रभु जी मेरे सामने प्रकट हुए और झट से मेरे हाथ से ब्लेड छीन ली और दूर फेंक दिया। कनखल से एक गुरु भाई ऋषिकेश आश्रम आया। श्री प्रभु जी ने उससे कहला दिया – चन्द्रमोहन से कहना कि अब वह खेचरी क्रिया न करे। अस्तु।

मैं तुम्हें **'ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा'** की बात समझा रहा था। पाँच भूतों एवं तन्मात्राओं पर पूरा–पूरा अधिकार पाने वाला योगी ज्ञान तृप्तात्मा होता है। बुद्धि और पुरुष का भिन्न–भिन्न साक्षात्कार करके योगी विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। उसे ही युक्त योगी कहते हैं। वह ही पूर्ण आत्मा साक्षात्कार का अधिकारी होता है। श्री प्रभु जी ने नैपाल से आकर जितना भी कार्य किया वह बिल्कुल शास्त्रीय पद्धति का था। **'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ** यह अखिलात्मा का उपदेश है। मनुष्य को शास्त्र विधि से चलना चाहिए। उपनिषदों में, वेद में, स्मृति में जैसा उपदेश है उन सब का हम को पालन करना चाहिए। हमारे ग्रन्थों में कुछ लोगों ने मिलावटें पैदा कर दी हैं। जिससे सन्देह पैदा हो जाता है। उन लोगों के मन में जैसी–जैसी प्रेरणा रही वैसा उन्होंने लिख डाला और बहुत से अन्धकार में चलने वाले उन बातों को मान कर चल भी पड़े। वह कलंक रहा हमारे ऋषि–मुनियों पर। वस्तुतः वह ऋषि–मुनियों का कथन नहीं था केवल मात्र कुछ लोगों की मानस भ्रान्ति थी। कहने वाले ने तो यहाँ तक कह दी **मद्यं मांसं च मत्स्यं च मुद्रा मैथुनमेव च'।**

इनको लोगों ने धर्म मान लिया और कह दिया यह भी मुक्ति के साधन हैं। यह मुक्ति के साधन तो नहीं हैं। मरने के साधन जरूर हैं। उन लोगों के कर्म खराब आ गये। उन्हें मनुष्य जन्म कभी नहीं मिल सकता। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि हमें वेद, स्मृतियों का उपदेश मानने चाहिए। जो इस प्रकार के अन्य भ्रामक ग्रन्थ हैं। उन पर नहीं चलना चाहिए। गीता में

प्रकरण आया है – **'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यम् चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।'** एक तरफ तो यह उपदेश है कि जिस पद को प्राप्त करने के लिए मनुष्य ब्रह्मचर्य पालन करता है और दूसरी तरफ मिलावट करने वाले कहते हैं ब्रह्मचर्य कोई चीज ही नहीं। हमारे मिर्जापुर के एक शिष्य श्री गोपाल दिल्ली में कानून मन्त्री थे, तुम्हारे गुरु भाई थे। उन्होंने एक बार मुझे अपनी कोठी में बुलाया। वहाँ पर उनके साथी कई मन्त्री मुझसे मिलने के लिए आये। उन लोगों ने मुझसे बहुत सारे तर्क वितर्क किये। वे कहने लगे – माँस क्यों नहीं खाना चाहिए? भोग क्यों नहीं भोगने चाहिए? यदि इन इन्द्रियों की उपयोगिता ही नहीं होती तो भगवान को ये इन्द्रियाँ लगानी ही नहीं चाहिए। वे सब एक ही प्रकार की मनोवृत्ति के थे। सब भगवान की भूल निकालने लगे। परमात्मा को रसनेन्दिय नहीं लगाना था। उपस्थेन्द्रिय नहीं लगाना था आदि–आदि। मैंने कहा – अच्छा भाई! परमात्मा से गलती हो गई परन्तु परमात्मा ने यह भी तो कहा – **'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यचरन्ति'** 'भगवान के इस आदेश को क्यों नहीं मानते हो?' अस्तु। भगवान ने गीता के सातवें अध्याय के आरम्भ में वही उपदेश किया है जो आनन्द कन्द श्री प्रभु जी ने नैपाल हिमालय से आकर के हमें दिया है। तुम समझते होंगे हमारा कोई मजहब है, हमारा मजहब नहीं है। हम मजहबी नहीं हैं। हमारा तो मजहब वह है जिसे कृष्ण चन्द्र मानते हैं हमारा मजहब वह है जो वेदों में वर्णित है। हमारा मजहब वह है जिसका सिद्धान्त मनु जी ने कहा है – जो उपनिषदों में है वहीं हमारा मजहब है। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी हिमालय से आये। देखो! जिनको यथार्थ में दीक्षायें नहीं हुई उनको तो कुछ भी बता दिया गया, मन की एकाग्रता श्री प्रभु जी ने लोगों को कराई। प्रभु जी का सिद्धान्त बहुत ऊँचा सिद्धान्त था मैंने कल तुम्हें बताया था कि बड़े–बड़े प्रचारक जिनके आज हजारों शिष्य हैं हमारे गुरु भाई हैं। बाल योगेश्वर वगैरह हमारे बच्चे ही हैं हमारी जो **''चरणाविन्द गुरुदेव नमामि''** आरती हैं जिसे ब्र. गोपालानन्द जी ने गोलोकधाम में ध्यान में सुनी है वह उनकी पुस्तकों में है। ब्र. गोपालानन्द जी और हंस जी महाराज की मित्रता थी उन्होंने उनसे वह आरती लिख ली थी। हंस जी महाराज हमारे गुरुदेव श्री प्रभु जी के ही शिष्य थे। अमृतसर की लाली देवी जी आज काफी मान सम्मान पा रही हैं हमारी गुरु बहिन हैं। श्री प्रभु जी से मेरे सामने दीक्षा ली थी। मैं तथा नरसिंह मूर्ति जी श्री प्रभु जी के पास रहा करते थे। लाली देवी का ध्यान बहुत ऊँचा उठा – श्री प्रभु जी ने कहा – लाली! समय आयेगा। तेरा प्रभाव बहुत बढ़ेगा किन्तु किसी प्रकार की भी अहंकृति मन में हो तो फिर तुम न्यारा काम करना। अब तक न्यारा काम कर रही है। अमृतसर की हमारी एक बच्ची हैं शान्ति देवी। वह मेरे साथ विवाद में पड़ गई कि लाली देवी आप की गुरु बहिन नहीं हो सकती। शर्त बंध गई। हमने दो स्त्रियों को

उनके पास भेजा। उन्होंने लाली देवी से पूछा– आप योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज को जानती हैं? उन्होंने कहा – याद नहीं है। फिर उन्होंने पूछा – क्या आपने योगेश्वर प्रभु रामलाल जी से योग साधना आश्रम में दीक्षा ली थी? उन्होंने कहा – हाँ! ली थी, यह सब उन्हीं की बदौलत है। फिर उन्होंने कहा – मुझे चन्द्रमोहन जी और नरसिंह जी भी याद आ गये। यह दोनों छोटी आयु के थे इनमें से एक मद्रास का था। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि श्री प्रभु जी मान के इतने (संकेत करके) भी भूखे नहीं थे। ब्र. गोपालानन्द जी जो वरदान एक योगी ने दिया था कि तुम्हें पूर्ण सद्गुरु मिलेंगे। उन्होंने नकुड़ में एक योगी मिले सहजानन्द। यह उनके शिष्य बने। वह अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के थे। ब्र. गोपालानन्द जी की श्री प्रभु जी से सहारनपुर में भेंट हो गयी। वे दीक्षित हो गये सहजानन्द को पता चला – उन्होंने ब्र. गोपालानन्द को पाँच शाप दे दिये। गोपालानन्द जी ने प्रभु जी को पत्र लिखा। प्रभु जी ! इस प्रकार से स्वामी सहजानन्द ने मुझे पाँच शाप दिये हैं। श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया – मेरे पत्र के मिलते ही तुम्हारे सारे शाप निवृत हो जायेंगे। दिन के 12 बजे से 8 बजे तक शाप का प्रभाव रहा किन्तु प्रभु जी के पत्र मिलते ही शाप की निवृति हो गई। प्रभु जी ने शाप के स्थान पर वरदान देते हुए लिखा था – 'तेरे औषधियाँ अमृत की तरह काम करेगी और अन्त में मेरी सद्गति होगी।' प्रभु जी ने सारे शाप उलट दिये। लाहौर में ब्र. गोपालानन्द जी व मुल्खराज जी महाराज दोनों योग प्रचार में थे। कृष्ण गली नं. 2 में कीर्तन कराना शुरू किया। उस कीर्तन में कम से कम 100 व्यक्ति बेहोश पड़े थे जिनमें शिवानन्द जी मुनि की रेती वाले तथा आर्य समाज के साधु स्वामी सत्यानन्द जी जिन्होंने बाद में रामनाम की महिमा लिखी, सम्मिलित थे। गोपालानन्द जी का बनाया कीर्तन **गोविन्द जय–जय गोपाल जय–जय राधा रमण हरि गोविन्द जय–जय** सारे संसार में फैल गया। प्रभु जी के सामने बीस मण्डलियाँ बनी। बहुत से मण्डली में श्री प्रभु जी के चित्र नहीं रखते थे। केशोराम खन्ना ने श्री प्रभु जी से कहा – प्रभुजी! ये लोग कीर्तन में आप का चित्र नहीं रखते हैं, श्री प्रभु जी ने पूछा– किसका चित्र रखते हैं? उन्होंने कहा – भगवान राम का राते हैं श्रीकृष्ण का रखते हैं भगवान शिव का रखते हैं। श्री प्रभु जी ने कहा – कीर्तन में इन्हीं का चित्र ठीक है हमारे चित्र नहीं। प्रभु जी ने कहा– बताऊँ योगी क्या करते हैं? 'यू लाईट दिखा दी और पीठ फेर ली'। गोपालानन्द जी की भी दीक्षा वैसे ही हुई थी। **'दिया मिट्टी का ढेला, नूरे हक गोपाल ने देखा।'** श्री प्रभु जी ने उन्हें मिट्टी का ढेला दिया था उसी में सब काम कर दिया। मुल्खराज जी को भी सन्ध्या करते–करते ही सब दे दिया। बाल कृष्ण दास को भी प्रभु जी ने कहा– जो भजन नित्य करते हो सो करो। प्रभु जी ने उनका भी उसी में सब कुछ करा दिया। उसी 1 दिव्य

अनुभूतियाँ हुई। यही दीक्षा थी। ऋषिकेश में शाम के समय श्री प्रभु जी घूमने जाया करते थे। गंगा किनारे पत्थर पर एक साधु भजन में बैठा रहता था। प्रभु जी उसके पास जाते और उसे देख कर चले आते। मैंने पूछा – प्रभु जी आप उन्हें क्यों देखते हैं? प्रभु जी ने कहा – ''बस! ऐसे ही।'' वह साधु तीन दिन बाद दण्डवत् करता हुआ आश्रम में आया कहने लगा– प्रभो! आप गंगा किनारे आकर मेरे सिर पर हाथ रख जाते थे। मुझे आप का पता नहीं चलता था आप क्या हैं कौन हैं? आज मैं आपके तेज किरण के सहारे आश्रम आया हूँ। प्रभु जी की दीक्षा ऐसे ही होती थी। कहने का अभिप्राय प्रभु जी क्षण में क्या से क्या कर दिया करते थे। आँख से देख ली दृग दीक्षा हो गई, कृपा हो गई। जो उनकी दृष्टि के सामने पड़ जाते हैं वह भी दीक्षित ही होते हैं। श्री प्रभु जी तो शक्ति वाले बनाना चाहते हैं। साधारण मनुष्य देवताओं का पशु कहा जाता है। किन्तु योगी अपनी कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर सारी शक्तियों के मालिक बन जाते हैं। अस्तु।

देखो! यह कुम्भ का मेला है हमने जगह–जगह पर जाकर देखा है। योग सिद्धान्तों की बात यहाँ कहीं भी सुनने को नहीं मिलतीं किन्तु यह बात निश्चित है कि योग ही मनुष्य के कल्याण का मूल साधन है यद्यपि गीता में काल चक्र, युग चक्र को एक साथ घुमाने वाले अखिलात्मा भगवान ने कहा है – **'भक्त्या मामभिजानाति यावान यश्चास्मि तत्वत:।। ततो माम् तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्'।।**

अर्थात् भक्ति से मैं जितना व जैसा हूँ इसको भक्त जान लेता है जान लेने के बाद तत्व से जानकर मुझमें प्रवेश कर जाता है यहाँ पर भक्ति से जानने की बात कही गई है। किन्तु प्रवेश योग से ही होगा। योग और भक्ति वस्तुत: कोई अलग वस्तु नहीं है। योग दर्शन में भगवान पतंजलि ने **'ईश्वर प्रणिधानाद्वा'** कहकर ईश्वर प्रणिधान को समाधि का उपाय बताया है। ईश्वर प्रणिधान अर्थात् भक्ति विशेष से ईश्वर साधक के सामने आ जाता है और उसे समाधि जैसी अभिलक्षित वस्तु प्रदान कर देता है। योग का अर्थ है चित्त वृत्तियों का पूर्ण निरोध। तभी कैवल्य की प्राप्ति होती है कैवल्य का अर्थ है बुद्धि अपने प्राकृत स्वरूप में आ जाये और पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाये। इस समय वृद्धावस्था में न बुद्धि अपने स्वरूप में है न पुरुष। बुद्धि वस्तुत: जड़ है आत्मा की चेतनता उसे मिली वह भी चेतन हो गई आत्मा बुद्धि के संयोग से प्रत्ययानुपश्य–बुद्धि बोधात्मा बन गया। खाना पीना, सोना, सुखी–दु:खी होना ये सब बुद्धि के धर्म हैं। जिस प्रकार से ये जो सामने बल्व है उसको जब तक पीछे से बिजली की तरंगें नहीं मिलेगी तब तक वह जलेगा नहीं। इसी प्रकार से बुद्धि और पुरुष के सम्मेलन से हमारा सब व्यवहार एवं वृत्तियाँ चल रही हैं। चित्तियों का

समूलोन्मूलन ही योग कहलाता है। अस्तु।

इस प्रकार से श्री प्रभु जी ने नैपाल से आकर अपने बच्चों को वह शिक्षा दी है जो ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा बनाकर पूर्ण योगी बना देता है। तुम सबने इसी पद्धति को प्राप्त किया है इसलिए दृढ़ता से अपनी साधना में लग जाओ। जो श्री प्रभु जी के चरण कमलों का चिन्तन करते हुए साधना करेगा, उस पर प्रभु जी कृपा अवश्य होगी सबका भला होगा।

● ● ●

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्जरादिव।।
व्यवहारसहस्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च।
यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु व्यक्ता सुखासुखे।।
यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादा स्वामनुज्झतः।
उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव।।

(योगवशिष्ट 6/28,30,31)

जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्म के सम्पादन में कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत के मोहपाश से वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरे से सिंह। संसार में आने-जाने वाले सहस्त्रों व्यवहार हैं। उनमें सुख और दुःख-बुद्धि का त्याग करके शास्त्रनुकूल आचरण करना चाहिए। शास्त्र के अनुकूल और कभी उच्छिन्न न होने वाली अपनी मर्यादा का जो त्याग नहीं करता, उस पुरुष को समस्त अभीष्ट वस्तुएँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे सागर में गोता लगाने वाले को रत्नायें का समूह।

सदाचार और योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

सदाचार मनुष्य का एक विशिष्ट गुण है। इसी से ही मनुष्य और पशु में भेद किया जाता है। आचरण हीन व्यक्ति न इस लोक में सुख व यश पाता है और न ही परलोक में। शास्त्रों का लेख है – **आचार हीनं न पुनन्ति वेदा: ?** अर्थात् सदाचार रहित, दुराचारी व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। यदि कोई वेदशास्त्रों का पारङ्गत भी हो परन्तु आचरण से पतित हो तो उसे वेद भगवान भी पवित्र नहीं कर सकता। स्वस्थ मानव समाज की आधारभित्ति सदाचार ही है। इसी से मनुष्य, मनुष्य कहलाता है। सदाचर से मनुष्य सुख को पाता है। ऐसे व्यक्ति वातावरण को पवित्र करते हैं। योग आध्यात्म-विज्ञान की गूढ़ विद्या है उसमें पवित्र विचार वाला एवं सदाचार युक्त व्यक्ति ही सफलता को पा सकता है। योग की प्रथम सीढ़ी के रूप में यम-नियम का निरूपण किया गया है। इनके पालन से ही योगी को अध्यात्म सम्पदा प्राप्त हुआ करती है।

हठयोग का अधिकारी कौन है ? इस पर कहा गया है कि साधक आस्तिक हो, गुरु भक्त हो, धैर्यवान, चरित्रवान तथा सदाचारी हो, उसे ही हठयोग का उपदेश करना चाहिए। यदि अनाधिकारी को यह गुप्त विद्या दी जाती है तो विद्या गुरु को ही कोसती है।

मनुष्य को अपने चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। शास्त्र का लेख है –

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च।

अक्षीणो वृत्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः।।

अर्थात् मनुष्य को यत्नपूर्वक चरित्र की रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता है चला जाता है धन के क्षीण होने पर भी उसका कुछ नहीं गया। किन्तु चरित्र नष्ट हो गया तो उसका सब कुछ नष्ट हो गया। अंग्रेजी में भी प्रसिद्ध उक्ति है Wealth is lost nothing is lost, health is lost something is lost if character is lost everything is lost.

जो व्यक्ति हमेशा झूठ बोलता हो, हिंसक वृत्ति का हो, धोखेबाज हो, पाखण्ड और दम्भी हो, ठग हो, विश्वासघाती हो वह व्यक्ति किसी भी तरह से अध्यात्म-मार्ग का अधिकारी नहीं है।

आयुर्वेद शास्त्र में भी सद्वृत्त का वर्णन मिलता है। जो व्यक्ति सदाचारी है, संयम नियम से रहता है, धार्मिक है, वह सद्वृत्त वाला व्यक्ति माना जाता है। वह बीमार नहीं होता है। यदि कदाचित् व्याधियाँ घेर लेती हैं तो अष्टाङ्ग योग के अभ्यास से, ध्यान समाधि के प्रभाव से व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

सदाचार आत्मा का आभूषण है। सत्य-आचरण को ही सदाचार कहा जाता है। आजकल दिल्ली जैसे प्रदेशों में नैतिकता को शिक्षा का अभिन्न अंग मानकर इसे बोर्ड के शिक्षा पाठ्यक्रम में जोड़ा गया है। योग एवं नैतिकता का ज्ञान विद्यार्थियों को प्रदान किया जा रहा है। यह एक अच्छा कदम है। आज समाज में पाश्चात्य संस्कृति की अन्ध-लहर बड़ी तेजी से बढ़ रही है। मनुष्य का खान-पान, रहन-सहन का ढंग बदलता जा रहा है। इसी में समाज अपने को सभ्य मान रहा है। अपनी प्राचीन संस्कृति एवं मर्यादाओं की उपेक्षा करता जा रहा है। जीवन के प्राचीन मूल्यों को जो भूल जाता है वह पथ भ्रष्ट होकर धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर हो जाता है। यही मनुष्य के अशान्ति का भी कारण बन रहा है। गीता में भी इस प्रसंग में भगवान कहते हैं -

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न च अभावयतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखम्।।

जो ईश्वर की भक्ति से विमुख है, उसके अन्दर सद्भावना नहीं आती और जो सद्भावना से रहित है उसके अन्दर शान्ति नहीं आती है और अशान्त व्यक्ति को सुख कहाँ से मिल सकेगा ?

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि सदाचार ही योग साधना की नींव है, आधार है। दृढ़ नींव के अभाव में बड़े-बड़े मकान गिर जाया करते हैं। दृढ़ आचारवान साधक ही योग मार्ग में आगे बढ़ सकता है उसी का मन एकाग्र हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने दैवी सम्पदा का वर्णन किया है। ये सम्पदा सदाचार का ही रूप है। आसुरी सम्पदा का व्यक्ति दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कटुता एवं अज्ञान से युक्त रहने के कारण दुष्कर्म में प्रवृत्त रहता है। परिणामस्वरूप घोर नरकगामी बन जाता है। अतः साधक को निरन्तर दैवी सम्पदा का अर्जन कर सदाचार युक्त पवित्र जीवन जीना चाहिए तभी अध्यात्म-योग में उसकी उन्नति सम्भव है।

●●●

महर्षि याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी संवाद

– डॉ. विजय सिंह

ज्ञान और वैराग्य में प्रतिष्ठा प्राप्त दृढ़ी लोग यदि दूसरों को योग, आध्यात्म का उपदेश दें तो उसका प्रभाव लोगों पर पड़ता है। अयोगी योग का उपदेश दे, अज्ञानी ज्ञान बघारे, रागी वैराग्य का उपदेश करे तो यह सब आडम्बर युक्त उपहास योग्य है। वेद, वेदांगों, पुराणों में यह स्पष्ट उपदेश दिया गया है कि सबसे पहले अपना उद्धार करो। अपना उद्धार किये बिना औरों के उद्धार की कोशिश एक अंधे द्वारा दूसरे अंधे को राह दिखाने से होने वाली विपत्ति जैसा होगा। वर्तमान काल में मिथ्या प्रचार की आँधी चल रही है। अध्यात्म में भी, ज्ञानी अग्रगण्य, महान भक्त तथा योगी दिखाने के निर्लज्ज प्रचार में लोग जुटे हुए हैं। इन सबों का उद्देश्य जन–कल्याण नहीं अपितु अपनी प्रतिष्ठा की उत्कट तृष्णा है।

इन बातों का स्मरण कराने का मन्तव्य यह है कि हम यह जान लें कि आत्मनिष्ठ सद्‌गुरु एवं आत्मतत्व को दर्शाने वाले शास्त्रों की सहायता बिना आत्म बोध नहीं हुआ करता है। अतः सद्‌गुरु शरणापन्न शिष्य जो निरन्तरता के साथ ध्यान करने वाले हों सत्य वस्तु का यथार्थ ज्ञान पा सकते हैं।

राजा जनक एवं मैत्रेयी जिनके पति योगिराज याज्ञवल्क्य हैं। इन्होंने राजा और अपनी पत्नी को ब्रह्मज्ञान कराया था। दोनों गृहस्थ थे। अतः ब्रह्मबोध हेतु अभ्यास एवं वैराग्य ही मूल वस्तु है। गृही, वैरागी, संन्यासी से मतलब नहीं है।

याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी की कथा प्रबुद्ध पाठकों को कई बार पढ़ने को मिली होगी। इस लेख में इस प्राचीन कथा का वर्णन वर्तमान सापेक्ष में पुनः पुनः विचारणीय है। एक बार महात्मा याज्ञवल्क्य ने अपनी दोनों पत्नियों मैत्रेयी एवं कात्यायनी को कहा अब मैं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। अतः अपने सम्पत्ति को तुम दोनों में बांट देना चाहता हूँ। बड़ी पत्नी मैत्रेयी जो विवेक–सम्पन्न वैराग्यवान थी बोली -- प्रभो! धन से मेरा क्या प्रयोजन? क्योंकि घोर संसार बंधन से मुक्त होने में यह धन बाधक ही है। विषय भोग बंधन कारक है। कृपया मुझे उस शाश्वत सत्य को देखने का सामर्थ्य दीजिये जिससे मायाजाल को मैं तोड़ सकूँ। इस परम धन के सिवाय भौतिक सम्पदा मैं आपसे प्राप्त नहीं करना चाहती हूँ।

याज्ञवल्क्य जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और भाव प्रवणता से मैत्रेयी के कल्याणार्थ ज्ञान सूर्य के प्रकाश हेतु उपदेश करने लगे।

1. सभी मनुष्य सम्बन्धों में प्रेम अपने हेतु से करते हैं। क्योंकि आपातकाल में सब पदार्थों धन, पुत्र एवं पत्नी का त्याग करके भी मनुष्य अपनी रक्षा करना चाहता है। अतः यह सबको सहज अनुभव में आता है कि सबसे बढ़कर प्रेम अपने में होता है। आत्मा परम प्रेम का

आधार है। अत: पत्नी–पुत्र आदि सातिशय प्रेम के आधार है।

2. हे मैत्रेयी ! तू जान ले आत्मा आनन्दपुन्ज है, आनन्द का सागर है। बड़े आश्चर्य का विषय है कि आनन्दाभिलाषी मनुष्य क्षुद्र बाह्य विषयों में आनन्द को क्यों खोजते रहते हैं जबकि उन्हें अपने आत्मा की खोज में जी जान से जुट जाना चाहिए क्योंकि आनन्द का परम अनन्त श्रोत तो स्वयं आत्मा ही है।

3. प्रिये! बाहरी विषय दु:ख के कारण हैं। इस प्रकार उनमें सुख की भ्रांति को पूर्णतया छोड़कर दृढ़ वैराग्य को तू स्वीकार करा। यद्यपि तुम वैराग्य सम्पन्ना हो, तथापि उस वैराग्य को दृढ़ बनाना चाहिए। मन को विषयों में संगता लाये बिना शांत एवं समाहित बनाकर आत्मा को प्रत्यक्ष देख ले। स्वरूप एवं आनन्दस्वरूप में स्थित होने पर कृतार्थता प्राप्त होती है।

4. मैत्रेयी ! श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन (गहरे ध्यान द्वारा) के द्वारा आत्मा के दर्शन करने चाहिए। सबसे पहले आत्मदर्शी सद्गुरु के शरणापन्न होकर उनके उपदेश एवं आत्मानुभूति विषयक ग्रंथों का अनुशीलन करना चाहिए। **आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:॥**

5. आत्म है क्या? आत्मतत्व अद्वितीय है, सर्वव्यापक है सब प्राणियों में वही आत्मा व्याप्त है। सच तो यह है कि जगत का भी आधारभूत वही है। यही ब्रह्म कहलाती है। सतो प्रधान बुद्धि द्वारा निरन्तर ध्यान करते रहने पर चित्त के पूर्ण निरोधावस्था में निर्विकल्प आत्मतत्व में रमता हुआ समाधि को प्राप्त हो जाता है। इस समाधि द्वारा आत्मतत्व का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर बुद्धि परम तृप्ती का अनुभव करती हुई परमानन्द लाभ करती है।

6. आत्म दर्शन प्राप्त हो जाने पर, देह, इच्छादि गुण, कर्म संजाल के भाव नष्ट हो जाते हैं। अब सभी प्राणियों में वह अपने को ही देखता है। ''दैहोऽहम'' का सुदृढ़ जन्म जन्मान्तरों से चली आ रही धारणा एकाएक ध्वस्त हो गयी। जैसे जागने पर स्वप्न के पदार्थ अलोप हो जाया करते है उसी प्रकार समाधि (आत्मज्ञानी) लाभ किये व्यक्ति को जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में उसे आत्म प्रकाश का ही भान होता है। वह जाग्रत में सारे व्यवहार करता हुआ भी अकर्ता बना रहता है। आत्म ज्ञानी सदा जीवन–मुक्ति पद पर आरूढ़ प्रत्यक्ष देखता है कि – मैं शुद्ध हूँ, अद्वितीय हूँ और आनन्द स्वरूप केवल आत्मा ही हूँ।

7. हे मैत्रेयी! एक मनुष्य जिसको आत्मप्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी है वह अचंचल मन वाला चरम लक्ष्य को प्राप्त कर कृत–कृत्यता बोध से भरा रहता है। अत: आत्म प्रतिष्ठा ही मानव का परम धर्म एवं कर्तव्य है। आत्म निष्ठा ही परम सुख है। आत्मनिष्ठा ही परम लाभ है। यही परम विद्या है जिसके जान लेने पर और कुछ जानना शेष नहीं रहता।

8. हे मैत्रेयी! आत्मा में प्रतिष्ठिता ही अमरता का परम साधन है। अत: यदि तुम इस अमरत्व की अभिलाषिनी हो तो अपनी इन्द्रियों से मन को खींच कर धैर्य पूर्वक आत्मा में नियोजित होने दो। यही अव्यभिचारी साधन आत्म दर्शन का एकमात्र उपाय है।

सकाम कर्मों को छोड़ अन्त:करण की शुद्धि के लिए निष्काम कर्म का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। आत्मोपलब्धि हो जाने पर सर्वत्र एक अपने सिवाय दूसरा कुछ नहीं होता अत: पूर्ण अभयत्व की प्रतिष्ठा भी आत्मनिष्ठा से ही प्राप्त होगी। ऐसा वेद वाक्य है **''द्वितीयाद् वै भयं भवति''।** द्वैत से ही डर पैदा होता है। क्योंकि नानत्व से ही इन्द्रिय व्यापार और इससे दु:ख–सुख पैदा होते हैं। सांसारिक प्रलोभनों से सहज मुक्त मन में ही प्रेम का भी प्राकट्य होता है।

अब हमें वर्तमान में जैसी अवस्था से हम गुजर रहे हैं उस पर थोड़ा विचार करना चाहिए। उपरोक्त याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी सम्वाद उन महान वैराग्य पूर्ण अन्त:करण वालों का आख्यान है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब तक हमें वैसी दृढ़ अभय–पद प्राप्त नहीं हो जाता, साधना में वैराग्य और अभ्यास द्वारा सतत् उद्यम रत रहना ही चाहिए।

समय के परिवर्तन के साथ पात्रता में बड़ा फेर बदल होता गया है। आज भोग–प्रधान, तृष्णाओं से ग्रस्त कलुषित मन में निष्काम कर्म, ध्यान–समाधि या उपरोक्त प्रकरण जैसा ज्ञान–विचार का अभ्यास शास्त्रों के अनुसार करना आसान नहीं है। कलि अपना दुष्प्रभाव दिनों–दिन फैलाता जा रहा है। अत: हमें अपने सद्गुरु उपदेशित तप, स्वाध्याय एवं प्रणिधान में ही निरन्तर लगकर चरम लक्ष्य आत्मोप्लब्धि की ओर बढ़ते जाना है। कलिकाल में भक्ति (ईष्ट अथवा सद्गुरु) साधनाओं में अपने शक्ति के अनुसार दम्भ–कपट त्याग कर करते रहना चाहिये। सबसे आसान है नाम (मंत्र) स्मरण, जप करते–करते स्वाध्याय का एक भाग पुष्ट होने पर सद्गुरु एवं दैवीकृपा से साधक अन्तर जगत में प्रवेश पा जात है। पापी या विषयी भी जप कर सकता है। सामान्यत: चित्त को निष्काम बनाना, चित्त को एकाग्र बनाना अथवा चित्त को गूढ़ चिंतन में लगाना विषयी लोगों के लिए सम्भव नहीं है। अत: जप, प्रार्थना, कीर्तन, सत्संग आदि साधनाओं को नित्य करते रहने से एक दिन भगवान के, इष्ट के, श्री सद्गुरु के चरणारविन्दों का सच्चा अनुराग मन में अंकुरित हो उठता है। फिर बहिर्मुखता शनै: शनै: क्षीण होगा और फिर चित्त धारणा में स्थिरता प्राप्त करते हुए साधना की तत्परता से एक दिन ध्यान में रम जायेगा। साकार के ध्यानानन्द से अनुराग दृढ़ होता जायेगा। साकार ही व्यापकता में निराकार हो उठता है। अत: साकार और निराकार में ईशत्व दो नहीं हैं।

सद्गुरु प्रदत्त चक्रों में प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि के अभ्यास से आगे बढ़ते जाने पर निराकार ब्रह्मतत्व का भी ज्ञान साधक को तुरीय एवं तुरियातीत (असम्प्रज्ञात) में होता ही है। अतएव विद्वान हो, ग्राम्य जगत का हो, पुरुष हो या स्त्री योगमार्ग में लगे सिद्ध पीठ से जुटे साधक साधना एवं गुरु कृपा से इस तप्त संसार से पार लग ही जायेंगे।

● ● ●

गोरखपुर में सवांई आश्रम का प्रतिनिधित्व

– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी,

विश्वविख्यात गोरक्षपीठ गोरखनाथ मंदिर–गोरखपुर में ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजय नाथ की 44वीं पुण्यतिथि के सप्तदिवसीय कार्यक्रम पर जहाँ देश के विभिन्न भागों से योगी और सन्त जनों ने सहभागिता की वहीं योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी द्वारा स्थापित और योगिराज गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी द्वारा विस्तारित श्री सिद्धगुफा सवांई आश्रम, एत्मादपुर (आगरा) का प्रतिनिधित्व आचार्य डॉ. दासलाल द्वारा किया गया।

दिनांक 21 सितम्बर 2013 को दिग्विजय नाथ स्मृति सभागार में ''योग एवं आध्यात्म सम्मेलन'' गोष्ठी के मुख्य वक्ता एवं मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. दासलाल योगाचार्य ने –योग को भारत की अनमोल एवं प्राचीन धरोहर बताते हुए कहा कि योग आधार शरीर है। मन के शुद्धिकरण, एकाग्रता और स्वस्थ शरीर के लिए योग जन–जन के लिए आवश्यक है, उपयोगी है। लय, मंत्र और अजपा जाप योग के उच्चतर सोपान हैं जो योगी को कर्तुमअकर्तुम अन्यथा कर्तुम की शक्ति से सम्पन्न बनाते हैं।

आचार्य डॉ. दासलाल ने पूज्य गुरुदेव चन्द्रमोहन जी के सानिध्य में रहकर योग सिद्धान्तों और क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त किया है। इस प्रकार डॉ. दासलाल ने श्री सिद्धगुफा का उस स्थान पर प्रतिनिधित्व किया जहाँ – पीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ, उत्तराधिकारी सांसद योगी आदित्य नाथ, पूर्व सांसद डॉ. रामविलास वेदान्ती, पूर्व गृह राज्यमंत्री स्वामी चिन्मयानन्द, अयोध्या से पधारे श्री कौशल किशोर दास, उड़ीसा से योगी शान्ति नाथ, दिगम्बर अखाड़ा से स्वामी सुरेश दास, स्वामी गंगादास, प्रेमदास, शान्तिनाथ, राम मिलनदास और योगाचार्य श्री राम कृष्ण आदि देश के अन्य अनेक सन्तों को सुनने हजारों व्यक्ति प्रति दिन आते थे।

ज्ञातव्य है कि अपने जीवनकाल में पूज्यगुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी कई बार यहाँ पधारे थे तो पीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी ने भी कई बार श्री सिद्धगुफा के दर्शन किये थे। आचार्य डॉ. दासलाल का प्रतिनिधित्व श्री गुरुदेव और सवांई आश्रम से जुड़े सच्चे साधकों एवं व्यक्तियों के लिए गौरव और प्रसन्नता की बात है।

● ● ●

गोरखपुर में सवाई आश्रम का प्रतिनिधित्व करते हुए आचार्य डॉ. वंसलाल ब्रह्मचारी जी एवं अन्य सन्तगण और श्रोतागण

योग-चिकित्सा

– श्री गिरीशदेव वर्मा

सर्वांगासन का क्या प्रभाव थोरायड पर पड़ता है, इसके सम्बन्ध में हमने अभी तक चर्चा की है। अब हम जानना चाहेंगे कि इस आसन का प्रभाव पैरा थोरायड ग्रन्थि पर क्या पड़ता है और उससे कौन–कौन से रोगों को लाभ पहुँच सकता है।

पैरा थोरायड ग्रन्थि (Para Thyroid Glands)

इस ग्रन्थि की संख्या चार होती है। दो ग्रीवा में थोरायड ग्रन्थि के ठीक पीछे स्थिति रहती हैं। इन ग्रन्थियों का आकार छोटा लगभग छः मि. मी. लम्बाई में व 3 से 4 मि. मी. चौड़ाई में होता है। इसका रंग भूरा लाल होता है। दो ग्रन्थियां ऊपर और दो नीचे स्थित रहती हैं। इस ग्रन्थि से पैरा थिन (Para Thrin) नामक हारमोन प्रवाहित होता है। इस हारमोन का कार्य रक्त में कैलशियम और फासफोरस की मात्रा पर नियन्त्रण रखना है। इस हारमोन की कमी से बच्चों की हड्डियां कमजोर व लचीली हो जाती हैं। जब इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता कम हो जाती है तब मनुष्य के हाथ पैरों में ऐंठन होने लगती है।

मनुष्य में थोरायड व पैरा थोरायड दोनों ग्रन्थियां बहुत ही निकट से सम्बन्धित रहती हैं और उनका अन्तर जान नहीं पड़ता है, किन्तु अन्य पृष्ठ–वंशीय पशुओं में यह दोनों ग्रन्थियां अलग दिखाई पड़ती हैं। पहले वैज्ञानिक यही समझते थे कि पैरा थोरायड कोई अलग ग्रन्थि नहीं है बल्कि थोरायड का ही एक अंग है। चीर–फाड़ के समय जब किसी पशु के गले से थोरायड निकालते थे तब पैरा थोरायड ग्रन्थि भी निकल जाती थी और तब पशु में ऐंठन व अकड़न शुरू हो जाती थी। अतः बहुत दिनों तक यह समझा जाता रहा कि थोरायड के निकालने से ही अकड़न होती है। बाद को विज्ञान ने प्रगति की और थोरायड व पैरा थोरायड को बारीकी से देखा गया तो दोनों ग्रन्थियां अलग–अलग दिखाई दीं। इसके बाद किसी पशु की केवल थोरायड निकाल लेने पर कोई ऐंठन नहीं हुई और जब केवल पैरा थोरायड को निकाला गया तब ऐंठन शुरू हो गई। इससे यह बात निश्चित हो गई कि दोनों ग्रन्थियां अलग–अलग हैं और उनके कार्य–कलाप भी अलग–अलग हैं। शरीर में ऐंठन व अकड़न का मूल कारण थोरायड का निकल जाना या निष्क्रिय हो जाना है।

पैरा थोरायड भी एक नली विहीन ग्रंथि है। यह अपने रस को सीधे रक्त नलिकाओं में प्रवाहित करती रहती है। हमारे शरीर के मांस तन्तुओं में एक प्रकार का विष पैदा हुआ करता है। पैरा थोरायड से निकले हारमोन इस विष को समाप्त करते रहते हैं। जब पैरा थोरायड ग्रन्थि निकाल दी जाती है या काम करना बन्द कर देती है तो यह विष मांस तन्तुओं में जमा होता रहता

है और बाद को ऐंठन व अकड़न पैदा करता है।

सर्वांगासन करने पर शुद्ध रक्त की पर्याप्त मात्र थोरायड के साथ पैरा थोरायड को भी मिलती रहती है और वे अपना कार्य सुचारु रूप से करते रहते हैं। उनसे हारमोन निकल कर रक्त के विष को मारा करते हैं और शरीर में शुद्ध रक्त प्रवाहित होता रहता है और स्वस्थता बनी रहती है।

जब पैरा थोरायड ग्रन्थियाँ काम नहीं करती हैं तब अपस्मार या मृगी रोग का दौरा पड़ने लगता है। ऐसा पाया गया है कि माता पिता के वंश में यह रोग होने से, चोट लगने से, हस्त मैथुन, उपदंश, शराब पीने, बहुत बोलने, कृमि, मानसिक अवसन्नता आदि के कारण यह ग्रन्थि निर्बल हो जाती है और मनुष्य को दौरा पड़ने लगता है। इस रोग का आक्रमण होने पर रोगी जमीन पर गिर पड़ता है। किसी–किसी को सिर में चक्कर आने लगता है। ऐसा मालूम देता है कि माथे में कोई कीड़ा रेंग रहा है। कान में भौं–भौं शब्द, सारे बदन में दर्द, सारे शरीर में कंपकपी आदि लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। रोग आरम्भ होते ही सारे शरीर में अकड़न, गर्दन कड़ी व टेढ़ी हो जाती है। आँखों की पुतलियाँ नीचे ऊपर उठने लगती हैं। हाथ की अँगुलिया सिकुड़ने लगती हैं और कलेजा धड़कने लगता है। चेहरा पहले पीला, पीछे लाल हो जाता है। मुँह से फेन निकलने लगता है। हाथ पैर पटकता है। पसीना निकलने लगता है। बीस तीस मिनट के बाद यह उपसर्ग कम हो जाते हैं और रोगी बेहोश हो जाता है। कुछ समय बाद वह होश में आकर ठीक हो जाता है।

आरगेनो थिरैपी के डॉक्टरों का कहना है कि मिरगी के रोग में यदि पैरा थोरायड ग्रन्थि का तत्व दिया जावे तो उसका पैरा थोरायड स्वस्थ व सबल हो जाता है और उसे यह रोग नहीं होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि सर्वांगासन के द्वारा पैरा थोरायड को सबल बना दिया जावे तो मिरगी रोग होने की सम्भावना मिट जायेगी।

सर्वांगासन के द्वारा मिरगी रोग की चिकित्सा करने का अवसर मुझे कम मिला है। एक बार एक रोगी आया भी तो उसने चार छः रोज आसन करके छोड़ दिया। कम से कम एक मास तक निरन्तर अभ्यास किया जावे तो थोरायड व पैरा थोरायड पर प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है। बीस से तीस वर्ष की युवा अवस्था में इस रोग के होने की अधिक सम्भावना रहती है। अतः हर नवयुवक– नवयुवतियों को सर्वांगासन का अभ्यास करना चाहिए और इस भयंकर रोग से बचे रहना चाहिए। यह विचार ठीक नहीं है कि रोग होने पर उसकी चिकित्सा की जायगी। सदैव यह प्रयास करना चाहिए कि यौगिक आसनों द्वारा शरीर को निरोग बनाये रखा जावे और रोग के आक्रमण की सम्भावना ही न हो।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त हर मनुष्य को चाहे वह युवा हो या वृद्ध, सर्वांगासन का अभ्यास करते रहना चाहिए। हम पहले बता आये हैं कि पैरा थोरायड जो हारमोन्स निकलता है

उससे माँसपेशियाँ विषरहित व स्वस्थ बनी रहती हैं। यदि मनुष्य की माँसपेशियाँ मजबूत हैं तो वह निरोग बना रहेगा। उसके ऊपर रोग कीटाणुओं का आक्रमण कोई प्रभाव नहीं डालेगा। उसकी युवा अवस्था स्थिर बनी रहेगी। वृद्धावस्था में जो माँसपेशियाँ ढीली हो जाती हैं वह दशा इस आसन के अभ्यासी की नहीं होगी।

अतः हर दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह आसन मनुष्य मात्र के लिए एक आवश्यक आसन है। इसकी जितनी भी महिमा बताई जावे वह कम है। अभी वैज्ञानिक खोजें हो रही हैं। हम लोगों को बाद में पता लगेगा कि भारतीय ऋषियों की यह अनुपम देन कितनी मूल्यवान है। इस आसन से मनुष्य का कायाकल्प हो जाता है। युवा अवस्था बनी रहती है। बुढ़ापा नहीं आता और मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।

● ● ●

परमात्मा की उपलब्धि

तिलेषु तैलं दूधनीव सर्पि-

रापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः

एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ

सत्यनैनं तपसा योऽनुपश्यति।

अर्थ - तिल में तेल, दही में घी, स्रोतों में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार छिपे रहते हैं, उसी प्रकार वह परमात्मा अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक उसको सत्य के द्वारा संयम के द्वारा, तप के द्वारा देखता रहता है यानि चिन्तन करता रहता है उसे वह परमात्मा अवश्य ग्राह्य हो जाता है। अर्थात् ऐसे संयमी योगी साधक को परमात्मा अवश्य प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

योगेश्वर चरित माला - श्री मंगामल

– श्री सद्गुरु देव जी

लगभग सन् 1928 की बात है, श्री आनन्द कन्द श्री गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज अमृतसर भाई के कटरे में निवास कर रहे थे। श्री गुरुदेव जी को हिमालय से लौटे कुछ ही समय हुआ था। शहर के लोगों को यह ज्ञान था कि ये साधारण भेष में छिपे हुए कोई महापुरुष हैं, इसलिए स्त्री–पुरुषों के यातायात का तांता लगा रहता था, सत्संग प्रायः चौबीसों घण्टे चलता रहता था। सभी स्त्री–पुरुष श्रेणीबद्ध होकर के अपने ध्यानाभ्यास वृद्धि के लिए आसन जमा–जमा कर बैठते थे। जो उस प्रवाह में आकर बैठ जाता था उसी को बड़े–बड़े दिव्य अनुभव जारी हो जाया करते थे और वही व्यक्ति इस अनुपम लाभ को पाकर के मग्न हो जाता था। सत्संग में आने वालों की भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। गली के मुख्य द्वार पर उसी गली के निवासी जिनका शुभ नाम मंगामल था, जो सोडा वाटर आदि की दुकान करते थे। स्त्री–पुरुषों की भारी भीड़ को आते–जाते देखकर उनके मन में भी यह ख्याल पैदा हुआ कि हम भी जाकर देखें कि इनमें क्या रहस्य है। ये स्त्री–पुरुष इतनी भीड़–भाड़ के साथ इनके पास क्यों जा रहे हैं। श्री मंगामल उस समय युवावस्था में थे उनका जन्म एक पवित्र क्षत्री कुल में हुआ था। किन्तु उनके आस–पास इष्ट मित्रों का इस प्रकार का संग प्राप्त हुआ कि जिसके फलस्वरूप वह किसी अवगुण से खाली नहीं रह सके। युवावस्था की तरंगें थीं। मन पर कुसंग का प्रभाव था इसलिए उन्हीं लहरों के अन्दर वे बहुत अधिक भोग–विलास की सामग्री इकट्ठी किया करते थे। इसी प्रकार के वातावरण से निकलते हुए किसी युवती का प्रभाव उनके मन पर पड़ा जो लाहौर में निवास करती थी और चरित्रहीन थी। श्री मंगामल के मन में उससे शादी कर लेने की धुनि सवार हुई और इस प्रकार का प्रयत्न करते रहे कि जिसके द्वारा वे सफल–मनोरथ हो सकें, किन्तु प्रयत्न करने पर भी वह किसी भी प्रकार से सफलता नहीं पा सके। उस युवती के सौन्दर्य से भारी डाह श्री मंगामल के मन में उत्पन्न हो गया और उन्होंने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय किया **''देहं वा पातेयं कार्यं वा साधेयं''** अर्थात् मैं अपने शरीर का नाश कर दूंगा अथवा जिस तरह भी हो सकेगा अपने इस काम को सिद्ध कर लूंगा। किन्तु जब वह किसी भी प्रकार से सफल प्रयास न हो सके तो उनका मन श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्दों की ओर आकर्षित हुआ। श्री मंगामल सोचने लगे कि योगिराज जी बड़े भारी शक्तिशाली हैं जिसके फलस्वरूप इतने लोगों की भीड़–भाड़ हर समय इनके पास लगी रहती है। अवश्य यह कोई आकर्षण मंत्र जानते हैं क्यों नहीं मैं कुछ दिन इनके सत्संग में जाकर उस मंत्र को सीख लूं

जिसमें मैं मनोभिलषित फल को पा सकूं, हुआ भी ऐसा ही। श्री मंगामल मेरे गुरुदेव के चरणारबिन्द में नित्य नियम से जाने लगे, उनके मन में भारी लगन थी कि उपरोक्त लाहौर वाली युवती से उनका सम्बन्ध कायम हो जाय। किन्तु एक महीना लगातार आने पर उसको इस प्रकार की प्रार्थना करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ कि वह श्री प्रभु जी के चरणारबिन्द में अपने मन के भाव कह सके। बार–बार श्री गुरुदेव जी उसको सम्बोधन करके पूछते थे कि मंगामल तुम कैसे आते हो, भरे समाज में मंगामल अपनी इच्छा को प्रकट नहीं कर सकते थे इसलिए वह बनावटी शब्दों में कह दिया करते थे कि महाराज जी मेरा कोई खास प्रयोजन नही है जिस प्रकार और व्यक्ति आते–जाते हैं मैं भी चला आता हूँ। मंगामल की भीतरी भावना को मेरे श्री गुरुदेव जी भली प्रकार समझते थे, उनकी बात को सुनकर के वह मुस्करा जाते थे और कह देते अच्छा कोई बात नहीं। अच्छा ही है तुम भी सत्संग में आ जाया करो। बड़े आश्चर्य की बात थी कि श्री मंगामल लगातार एक महीना इसी प्रकार बराबर सत्संग में आते रहे किन्तु उनको कोई इस प्रकार का मौका नहीं मिला कि वह अपने मनोभावों को प्रगट कर सकें। श्री मंगामल चाहते थे कि उनको कोई एकान्त का समय मिल जाय किन्तु भारी प्रयत्न करने पर भी वह श्री गुरुदेव को अकेला न पा सके और न ही अपने मनोभावों को कह सके। अन्त में निराश हो गये और यह चाहा कि यहां आना तो व्यर्थ ही है न एकान्तिक अवसर मिलेगा और नहीं मैं अपने मुख से कोई वाणी कह सकूंगा। जिस समय मंगामल के मन में इस प्रकार के भाव दृढ़ता से अधिकार करने लगे तो श्री गुरुदेव जी ने पूर्ण कृपा करके उसको एकान्तिक अवसर दे दिया, जिससे मंगामल के मन में अतिशय हर्ष बढ़ा और उसने अपने मनोभाव योग–योगेश्वर श्री गुरुदेव जी से कहने आरम्भ किये। मनुष्य का मन जिस प्रकार के रंग में रंगा हुआ करता है वह उसी प्रवाह में दूसरों को देखा करता है। मंगामल के विचार थे कि श्री गुरुदेव जी कोई जादू जानते है जिसके फलस्वरूप वह जिसको चाहें अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इन्हीं भावों को मन में दबाये हुए मंगामल ने अपने विचार श्री गुरुदेव जी के चरणारबिन्दु में प्रगट किये और कहा महाराज जी जिनको आप जादू करके नित्य खींचते हैं वह क्या चीज है। आप यह जादू या मंत्र कृपा करके मुझे बतला दीजिए। कुछ ही दिन के अन्दर मैं आपको एक ऐसी रूपराशि दिखलाऊंगा कि आप स्वयं चकित हो जायेंगे, और कहेंगे वाह मंगामल जो कुछ तू कहता था वह ठीक ही है। मंगामल को इस बात का क्या पता था कि उन योग योगेश्वर सर्व समर्थ श्री गुरुदेव को त्रिभुवन का ऐश्वर्य भी आश्चर्य में नहीं डाल सकता। जो सारे अण्ड ब्रह्माण्ड को अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा न कुछ की बराबर देख चुके हैं किन्तु मंगामल ने अपने मनोभावों को अपने मन के अनुसार कहा। उसके उन भावों के अनुसार श्री महाराज जी हंस पड़े और कहा कि अच्छा यदि ऐसी बात है तो थोड़ी देर यहां बैठा रह हम एक ऐसा उपाय करते हैं जिससे तेरा काम बन जायेगा किन्तु उस

काम को उसी प्रकार करना जैसे हम बतायें। यह कहकर श्री गुरुदेव जी ने एक सफेद कागज मंगवाया और उस पर लिख दिया कि तू फलाने दिन इतने बजकर इतने मिनट पर उस गाड़ी में लाहौर जायेगा और लाहौर पहुंचकर प्रयत्न करके उस युवती को अपने अधिकार में ले आयेगा और वह तुम्हारे साथ चली आयेगी। किन्तु कुछ समय के सम्पर्क के बाद वह तुम्हारा इतना इतना जेवर इतना रूपया व चांदी सोना लेकर भाग जायेगी और उसके जाने के बाद तुम्हारे मन में भारी कलेश पैदा होगा और फिर तुम उसको पुनः अपने पास लाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न में लग जाओगे। उसी मौके पर उस युवती का एक पत्र लाहौर से आयेगा उसमें लिखा होगा कि इतना रुपया लेकर आप लाहौर चले आयें उस रुपये की मुझे आवश्यकता है और उसके बाद सारे संसार को छोड़कर के मैं आपकी ही हो जाऊंगी किन्तु यह बात उसकी कपट पूर्ण होगी। यदि तुम यह रुपया लेकर उसके पास पहुंच गये तो एक बार प्रेम भाव दिखाकर तुम से रुपया ले लेगी और उस एक ही रात्रि के अन्दर तुम्हारा प्राणानत कर देगी। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि तुम वहाँ गये भी थे या नहीं, यह होनहार है और उस युवती के साथ तुम्हारा संस्कार है किन्तु एक माह लगातार तुम यहाँ आते रहे हो उसके फलस्व्यप जिस समय उस स्त्री के मंगाये हुए रुपये लेकर तुम दुबारा लाहौर जाने को तैयार होगे उस समय वह सर्व शक्तिवान प्रभो तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम्हें इस जाल से अवश्य निकाल लेंगे। यह सब बातें उस पत्र में लिख दी और वह पत्र लिफाफे में बन्द करके मंगामल को दे दिया और कह दिया इस लिफाफे को अपने सन्दूक में छिपा कर रख लो इसको पढ़ना नहीं। जब हम तुम्हें खोलकर पढ़ने की आज्ञा दें तभी तुम पढ़ना, यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो इसका परिणाम खराब होगा और किसी भी प्रकार की सफलता तुम्हें नहीं मिलेगी। मंगामल ने श्री महाराज जी के कर–कमलों से वह पत्र अपने सन्दूक में रख दिया और उसके बाद मंगामल पूर्ववत अपने कार्य–कलाप में लग गये। शनैः शनैः समय आया। मंगामल लाहौर पहुंच गये और उस युवती को ले आये और पत्र के लेखानुसार ही सब कार्य उनके हो गये। उस स्त्री को लाकर सभी कुछ भूल गये और उसी के रंग में रंगे रहने लग गये। उसी प्रकार से दिन व्यतीत हो जाने के बाद उपरोक्त युवती मंगामल के बहुत से रुपये को एवं सोने चांदी के जेवरों को लेकर भाग गई और कुछ ही समय के बाद उसने पत्र लिख दिया कि तुम इतना इतना रुपया लेकर मेरे पास आ जाओ, उसके बाद मेरा लोगों से सदा के लिए सम्पर्क टूट जायेगा और मेरी भागा–दौड़ी सब कुछ छूट जायेगी। मेरा यह शेष जीवन आपके साथ ही व्यतीत होगा। मंगामल उस पत्र को पढ़कर पुनः लाहौर जाने को तैयार हुए। अपनी दुकान से लगभग 300/– रु. लेकर पुनः लाहौर जाने को तैयार हुए वह अपनी दुकान पर खड़े थे। इतनी ही देर में योग–योगेश्वर श्री महाराज जी कहीं से घूमते हुए आये और अपने आप ही उस मंगामल से बोले कि मंगामल वह जो पत्र हमने तुम्हें लिखकर

दिया था इस समय उस को अब खोलकर पढ़ लो। अब तुम्हारा काम उसके पढ़ने से बनेगा। यदि तुम इस पत्र को नहीं पढ़ोगे तो अवश्य बड़ा भारी धोखा खा जाओगे एवं अपने मनुष्य जीवन को व्यर्थ ही खो बैठोगे। मंगामल ने श्री महाराज जी की वाणी सुनकर उस पत्र को निकाला और ज्योंही खोलकर पढ़ा तो उसमें वह घटना लिखी थी, जो अभी तक के जीवन में व्यतीत हो चुकी थी। इस पत्र को पढ़कर मंगामल को अपने मन में बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और उसने यह विचार किया कि इस पत्र में लिखी घटना ज्यों की त्यों घटित हो गई है। अतः उस स्त्री के हाथों मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है किन्तु तत्काल ही मोह ने रंग जमाया और मंगामल पुनः उस युवती के प्रेम विभोर हो गये एवं श्री महाराज जी से हाथ जोड़कर कहने लगे कि महाराज आपने जो कुछ लिखा है वह तो बिल्कुल सही है किन्तु उसके हाथों मारा जाऊं यह भी मेरे पुण्य का ही फल है। इसलिए मैं लाहौर अवश्य जाऊंगा और एक कृपाण अपने साथ ले जाऊंगा जितना रुपया उसने मंगाया है वह सब रुपया उसको देकर बाद में तेजधार की कृपाण उसके हाथ में दे दूंगा और निःसंकोच कह दूंगा कि तुम्हें रुपये की आवश्यकता थी वह रुपया मैंने हाजिर कर दिया है और उसके साथ–साथ यह कृपाण हाजिर है और मेरी गर्दन हाजिर है। अतः तुम मुझे निःसंकोच कत्ल कर दो, मुझे तुम्हारे दर्शन की ही अभिलाषा थी वह मेरी पूर्ण हुई। अब मेरी अन्तिम अभिलाषा है कि तुम्हारे हाथ से मरकर मेरे प्राण छूट जाय जिससे मैं तुम्हारे हाथों मरकर सुखमय लोक को चला जाऊं। श्री महाराज जी ने उसके इस प्रकार के विचारों को सुनकर उसको आज्ञा दे दी। और कह दिया अच्छा जाओ तुम स्वयं ही मरना चाहते हो तो हम क्या कर सकते हैं किन्तु मंगामल के उज्जवल प्रारब्ध आ चुके थे उन कृपा सागर की कृपा प्राप्त करनी थी। **''साधु वचन पलटे नहीं पलट जाय ब्रह्माण्ड''** की युक्ति के अनुसार श्री महाराज जी ने अपने पूर्व कहे हुए वचन को निभाना था, इसलिए मंगामल अमृतसर स्टेशन गये और शनैः शनैः उसका मन बदलने लगा उसने स्टेशन पर जाते–जाते विचार किया क्या फायदा होगा वह यह सब धन भी ले लेगी और मेरा कत्ल कर देगी क्यों मरूँ? जिन सर्व शक्तिवान ने भूत–भविष्य की बातें सब पहले ही लिखकर दे दी हैं। मैं उन्हीं की शरण जाकर क्यों न हो जाऊं। जो सब कुछ कर सकते हैं। यदि वह चाहेंगे तो कृपा करके मेरी इस कामना को अवश्य पूर्ण कर देंगे इसलिए मैं चलूं और उन्हीं के चरण पकड़ लूं। इन्हीं विचारों को लेकर मंगामल लौट आये और स्थान पर आकर योग–योगेश्वर श्री गुरुदेव जी के चरण पकड़ लिये और प्रार्थना की कि हे सर्व शक्तिवान! मेरी कामनाओं के आधार आप ही हैं कृपा करके आप मेरी सहायता कीजिए। मंगामल के इस प्रकार की अभ्यर्थना करने के बाद श्री गुरुदेव जी ने उस पर अनुग्रह किया एवं योग–मार्ग में दीक्षित कर शक्तिपात किया जिससे पहिले ही दिन में उसके तन–मन का सारा ही रंग बदल गया। मंगामल को प्रातः लगभग 9 या 10 बजे ध्यान में बैठाया गया और वह शाम के

लगभग 4 बजे तक अनवरत अपने ध्यानाभ्यास में बैठा रहा। ध्यान के आनन्द में उसने अपनी सुध-बुध को बिल्कुल भुला दिया वह इतना मग्न होकर के बैठ गया कि सुध दिलाने पर भी उसको सुध नहीं आती थी। अन्त में शाम के लगभग 5 बजे उसको गुरुदेव जी ने स्वयं उठाया। उनके उठाने पर भी उसने बार-बार उठने से इन्कार कर दिया और प्रार्थना की कि महाराज जी आप कृपा करके मुझे इसी प्रकार बैठा रहने दें। जिससे मेरे शरीर के अन्दर निवास करने वाले सभी देवी-देवता यथा स्थान ज्यों के त्यों बैठे रहें और मैं उनको देखता रहूं। श्री गुरुदेव व अन्य सत्संगी जो उसके पास थे उसकी स्थिति को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। मंगामल दिन प्रतिदिन अपने ध्यानाभ्यास को बढ़ाने लगे और उनका जीवन एक उच्च सन्त के रूप में परिवर्तित होने लगा। कुछ ही समय के बाद मंगामल एक सच्चे सन्त के रूप में बदल गये, उनके मन की वासनायें सब नष्ट हो गई उन्होंने अपने पहले जीवन को नरक की कीच समझा और अपने इस जीवन को कल्याण श्रोत अमर निर्मल धारा जाना। इस उच्चतम ध्यान-योग के अभ्यास को पाकर श्री मंगामल एक दम विरक्त स्थिति के अन्दर आ गये। जिस युवती में उनका अनुराग फंसा हुआ था अब वह उनको विषवत् दिखाई देने लगी एवं श्री मंगामल सब प्रकार से कृतार्थ हो गये।

●●●

– संसार त्याग करने के लिए संन्यासी बनकर वन में जाना पड़ेगा, ऐसी बात नहीं है। असल त्याग होता है मन में। मन से त्याग होते ही फिर चाहे संसार में रहें या वन में, एक ही बात है। मन से त्याग न होने पर वन में जाने पर भी संसार साथ-साथ जायेगा। और सभी प्रकार के भोगों को भोगायेगा, बच नहीं पाओगे।

– सांसारिक वासनाओं से विमुख बना मन जब ध्यान करते-करते स्थिर और शुद्ध हो जायगा तब मन ही तुम्हारा गुरु होगा। अपने अन्तर से ही गूढ़ से गूढ़ रहस्य समझने और सुलझा लेने की क्षमता पालोगे – सब संशय और प्रश्नों का समाधान हो सकेगा।

– स्वामी विरजानन्द

आत्मचिन्तन

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

हमारा यह मनुष्यलोक कर्मभूमि है। कर्म बुद्धिगत अहंभाव से किये जाते हैं। यदि कर्म के पीछे परोपकार, परहित तथा परसुख की भावना मन में जन्म लेती है तब वह पुण्यकर्म है और यदि इसके विपरीत भावना है, तब वह पापकर्म है। पुण्यकर्म के फल का भुगतान सुखानुभूति में होता है तथा पापकर्म के फल का भुगतान दुःखानुभूति में होता है। गुरुगीता इस सत्य की पुष्टि करती है कि –

पुण्यात् सुखमाप्नुवन्ति पुण्यं नैव कुर्वन्ति मानवाः।
पापात् दुःखमाप्नुवन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।।

अर्थात् मनुष्यों की यह विडम्बना है कि पुण्यकर्म का फलसुखानुभूति है किन्तु प्रायः मनुष्यों की प्रवृत्ति पुण्यकर्मों में नहीं होती। पापकर्म का फल दुःखानुभूति है किन्तु प्रायः मनुष्यों की प्रवृत्ति हठपूर्वक पापकर्मों में होती है। यही मनुष्यजीवन की विडम्बना है। महर्षि पतंजलि का भी यही कथन है कि –

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।।

अर्थात् पुण्य तथा पाप के आधार पर प्रारब्ध सुखानुभूति तथा दुःखानुभूति के रूप में क्रमशः प्रकट होता है। यही त्रिकालसत्य है।

परमात्मा की लीला में मनुष्ययोनि में जीवात्मा को प्रारब्ध के भुगतान के साथ–साथ कर्माशय में कर्मवृद्धि का भी अधिकार परमात्मा की विशिष्ट कृपा से मिला है जबकि अन्य योनियाँ केवल भोगयोनियाँ हैं। मनुष्यों के लिए एक और विशेष कृपा की गयी है।

''तीव्रसंवेगानामासन्नः।।''

(योगदर्शन 1/21)

अर्थात् तीव्रसंवेग वाले कर्मों जैसे एकाग्रचित्त की प्रार्थना, सिद्धपुरुषों का संकल्प, कठोर तप तथा समाधि की योग्यता वाले कर्त्ता के कर्म प्रारब्ध का तन्वीकरण तथा विस्तार करने में समर्थ होते हैं। मनुष्ययोनि पर परमात्मा की अत्यन्त महत्वपूर्ण कृपा है उसको विवेकबुद्धि प्रदान करना। इसी के द्वारा पुरुष तथा प्रकृति के सम्बन्धों तथा रहस्यों को जाना जा सकता है, अन्यथा नहीं। प्रकृति तथा पुरुष के विषय में भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धि अनादी उभौ अपि।

विकारांश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।
उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहे अस्मिन् पुरुष परः।।
यः एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।

अर्थात् पुरुष तथा प्रकृति दोनों अनादि हैं, क्योंकि दोनों में धर्मी तथा धर्म का सम्बन्ध है जैसे कि अग्नि तथा उष्णता का सम्बन्ध है। प्रकृति के गुणविकारों से उत्पन्न चित्त तथा वासनाओं को भी महर्षि पतंजलि ने अनादि कहा है कि –

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्।।

(योगदर्शन 4/10)

अर्थात् प्रत्येक युग तथा काल में प्रत्येक जीवात्मा में जन्म लेते ही जीवन की वासना तथा मृत्यु का भय नित्य बना रहता है। यह वासना का अनादित्व सिद्ध करता है। प्रकृति से प्रकट होने वाले गुण, गुणविकारों के अनन्त भाव तथा कर्माशय का कर्मविधान, सृष्टि के कारण–कार्य का तानाबाना बुनकर दृश्यजगत का निर्माण करते हैं। ''तत्सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्'' के अनुसार पुरुष जड़ प्रकृति को चैतन्यवान करने के लिए उसमें अन्यसा होकर प्रवेश करके लोकलीला के लिए भोक्ता बन गया है। वेदशास्त्र इसका प्रमाण है कि –

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।
दृष्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैः भ्रान्तदृष्टिभिः।।
ये तु ब्रह्मविदः विशुद्धचेतसः ते अखिलं जगत्।
ज्ञानात्मकं पश्यन्ति त्वत्रूपं परमेश्वरम्।।
सर्वगे तु निराधारे चैतन्यात्मनि संस्थिता।
अविद्या द्विगुणां सृष्टिं करोति आत्मालम्बनात्।।

अर्थात् पुरुष स्वभावतः सर्वसाक्षी, निर्गुण, सर्वव्यापी तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है, किन्तु माया के वशीभूत भ्रान्तिज्ञान से युक्त पुरुष यानि जीवात्मायें सर्वाधार आत्मतत्व को

दृश्यजगत के रूप में ही देखते हैं जिस प्रकाश प्रोजेक्टर से आने वाले प्रकाश को दर्शक चलचित्र के पर्दे पर मूवी के संसार के रूप में देखते हैं। विशुद्ध अन्तःकरण वाले ब्रह्मज्ञानी योगी इस सम्पूर्ण जगत को ज्ञानस्वरूप परमात्मा के रूप में ही अनुभव करते हैं। सत्य यही है कि स्थूल तथा सूक्ष्म रूप यह सम्पूर्ण दृश्यजगत परमात्मा की माया ने ही सर्वव्यापी चैतन्यस्वरूप परमात्मा का आलम्बन लेकर सृजित किया है। इसीलिए इस पंच भूतात्मक कारण, मन, बुद्धि तथा इन्द्रियादि करण तथा दृश्यजगत रूप कार्य की मूलकारण प्रकृति ही है। प्रकृति में प्रविष्ट पुरुष प्रकृति के गुणों का भोक्ता बनकर मायाबद्ध हो गया है, किन्तु परम सत्य यही है कि सर्वसाक्षी अक्षर ब्रह्म, सर्वनियन्ता परमात्मा, विश्व का पालन कर्ता तथा जीवभाव में भोक्ता भी एक ही परम पुरुष परमेश्वर है। जो जीवात्मा योगसिद्धि प्राप्त कर आत्मज्ञ हो गयी है वही पुरुष तथा प्रकृति के अभेदज्ञान तथा भेदज्ञान दोनों के रहस्यों तथा सत्य को जान जाती है, वह गुणातीत होकर मायापाश से मुक्त हो जाती है और स्वतन्त्र तथा जीवनमुक्त होकर जन्ममरण के बन्धन से मोक्ष पा जाती है। यह तो सत्य है कि –

''आत्मनि ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।।''

अर्थात् आत्मज्ञान के बाद कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता, किन्तु आत्मा तो बुद्धिबोधात्मक है और बुद्धि मायाकृत है तो आत्मज्ञान कैसे सम्भव हो। मन माया का प्रतिनिधि है तथा मन में माया के कामक्रोधादि गुणविकारों का अधिपत्य रहना स्वाभाविक है। गीता में कहा गया है कि –

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

अर्थात् मन का स्वभाव अत्यन्त चंचल है, हठी है तथा अत्यन्त शक्तिशाली भी, अतः मन पर नियन्त्रण करना उतना ही असम्भव सा है जैसा कि वायुमण्डल में वायु पर नियन्त्रण करना। यद्यपि बुद्धि मन से उत्कृष्ट है किन्तु मायाकृत होने से बुद्धि वही ज्ञान ग्रहण करती है जिसकी मन में भावना बनती है। बुद्धि के साथ एकाकारिता के कारण जीवात्मा उसी भावना से लिप्त रहती है। इसी कारण भगवान श्रीकृष्ण ने इस कठिन समस्या को बताकर उससे निदान का संकेत भी दिया है कि –

काम एषः क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धि एनं इह वैरिणम्।।
धूमेन आव्रियते वह्निः यथादर्शो मलेन च।
यथोल्वेनावृतो गर्भः तथा तेनेदमावृतम्।।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैः विमोहयति एष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।
इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धेः परतस्तु सः।।
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्य आत्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।

(गीता 3/37–43)

अर्थात् मायापाश से मुक्ति चाहने वाले साधकों के लिए सबसे बड़ी बाधा काम तथा क्रोध की मनोवृत्तियाँ हैं। कामवृत्ति का अर्थ है मन में सुखानुभूति की इच्छा जो कभी भोग से समाप्त नहीं होती अपितु वासना के संस्कारों के साथ वृद्धि को प्राप्त होती है तथा बाधा उपस्थित होने पर क्रोधवृत्ति को जन्म देती है तथा पापकर्मों में प्रवृत्त करती है। इस प्रकार गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन मजबूत होता जाता है। इस कारण जीवात्मा के परम शत्रु हैं। जन्ममृत्यु का कारण भी यही कामवृत्ति है, क्योंकि –

कामान् यः कामयते मन्यमानः। सः कामभिः जायते तत्र तत्र।।

अर्थात् जो कामना का चिन्तन करता है वह उसके संस्कार से प्रेरित होकर उसका भोग करने के लिए अनुकूल योनि में जन्म–मृत्यु का दुःख भोगने के लिए विवश होता है। चित्त में यह वृत्तियाँ माया का मलावरण सृजित करती हैं जिससे भोक्तापन का अज्ञान उत्पन्न होकर ज्ञान का आवरण बन जाता है। यह वृत्तियाँ मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करती हैं तथा अस्मिता क्लेश के कारण आत्मा की इन मायिक शक्तियों से तदाकारता है, अतः जीवभाव में बँधकर जीवात्मा अज्ञान में भ्रमित हो जाती है तथा मृगतृष्णा जैसी भ्रान्ति में सुख खोजती है जो दुःख के अतिरिक्त असमर्थता, विवशता का शिकार होकर जन्म–जन्मान्तरों में शोकातुर रहती है। अतः साधक को चाहिए कि सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि पर नियन्त्रण करके इस ज्ञानविज्ञाननाशनी कामवृत्ति को वासना सहित नष्ट कर दे। निश्चयात्मिका बुद्धि से मन पर तथा मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना सम्भव है। इसके लिए विवेकजनित वैराग्य तथा अष्टांगयोग की चिरकाल तक निरन्तर साधना की अत्यन्त आवश्यकता है। परमात्मा श्रीकृष्ण ने इसका

स्वयं गीता में मार्गदर्शन किया है कि –

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।।
सुखमात्यन्तिकं यद्‌तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वत:।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:।
यस्मिन् स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते।।

तं विद्यात् दु:खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योग: अनिर्विण्णचेतसा।।

अर्थात् अष्टांगयोग की साधना करते रहने से धीरे–धीरे सांसारिक वृत्तियाँ क्षीण होती जाती हैं, रजोगुण तथा तमोगुण पर सतोगुण हावी हो जाता है जिससे चित्त में सतोगुण का प्रकाश, ज्ञान तथा आनन्द व्याप्त हो जाता है। इस आनन्द का आकर्षण विषयसुख की ओर आकर्षण को क्षीण करता जाता है। कारण यह कि विषयसुख क्षणिक होता है, इन्द्रियों के साथ संयोग पर निर्भर करता है, किसी कर्म का फलमात्र है तथा सतोगुणी आनन्द का ही अंशमात्र है। इस प्रकार साधक सतोगुण की चित्त में वृद्धि से अपने ही आनन्दस्वरूप की झलक पाकर अपने ही अक्षय सुख में सन्तुष्टि पाता है। समाधि में इन्द्रियों के व्यापार के अवरुद्ध होने पर मन बुद्धि में लय होकर बुद्धिगत आत्मानन्द का अनुभव करते हुए पुन: क्षुद्र तथा क्षणिक सांसारिक सुखों में आसक्त नहीं होता। चित्त की इस स्थिति में रजोगुण तथा तमोगुण द्वारा सृजित प्रकाशावरण क्षीण हो जाता है तथा चित्त शुद्ध सतोगुण के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है जिसमें परमात्मा के आनन्दरस का प्रतिबिम्ब स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि –

सत्वं विशुद्धं जलवत्तथापि ताभ्यां मिलित्वा सरणाय कल्पते।
यत्रात्मबिम्ब: प्रतिबिम्बित: सन् स सदानन्दरसं समृच्छते।।

अर्थात् सतोगुण निर्मल जल के समान है जिसमें आत्मबिम्ब प्रत्यक्ष अनुभव में आता है, किन्तु रजोगुण तथा तमोगुण के मिश्रण में माया का संसार बनता है। निर्मल सतोगुण की स्थिति में योगी को पुरुष तथा प्रकृति का भेदज्ञान हो जाता है जिससे कि –

''न लिप्यते लोकदु:खेन बाह्यम''

''सत्वपुरुषान्यतारव्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्व सर्वज्ञातृत्वं च''

अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष का भेदज्ञान होने पर माया के अविद्याजनित अनन्त भावों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है तथा योगी को सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है और तब वह मनोविकाररूप दु:खों से प्रभावित नहीं होता। इसी को योगसिद्धि कहा गया है जिसमें दु:खों का नितान्त अभाव है। अत: प्रत्येक साधक का यही लक्ष्य होना चाहिए। हमारे शास्त्रों का यही निष्कर्ष है कि जीवात्मा परमात्मा का ही अज्ञानकल्पित स्वरूप है। अज्ञान के नष्ट होते ही दोनों एक हो जाते हैं यही योगसिद्धि है। इस सत्य के शास्त्र प्रमाण हैं कि –

''भ्रान्त्यारूढ: स: एव आत्मा जीवसंज्ञ: सदा भवेत्।।''

(योगवशिष्ठ)

आत्मा हि क्षेत्रज्ञसंज्ञोऽयं संयुक्त: प्राकृतै गुणै:।
तैरेव विगत: शुद्ध: परमात्मा निगद्यते।।
पश्यति आत्मानं अन्यच्च यावद्वै परमात्मन:।
तावद् सम्भ्राम्यते जन्तु: मोहितो निजकर्मणा।।
अनादिसम्बंधवत्या क्षेत्रज्ञोऽयं अविद्यया।
युक्त: पश्यति भेदेन ब्रह्मतत्वं आत्मनि स्थितम्।।
मनोवृत्तिमयं द्वैतं अद्वैतं परमार्थत:।
मनसो वृत्तय: तस्मात् धर्माधर्मनिमित्तजा:।।
निरोधव्या: तन्निरोधं द्वैतं नैवोपपद्यते।
मनोदृष्टमिदं सर्वं यत्किंचित् सचराचरम्।
मनसो हि अमनीभावे अद्वैतभावं तदाप्नुयात्।।
यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्ठति ततोयाति परमां गतिम्।।
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे वृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
प्रथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्ट: ततस्तेनामृतत्वमेति।।

अर्थात् परमात्मा की इस माया को समझना आवश्यक है कि इस संसार का प्रत्येक अवयव, प्रत्येक दृश्य तथा प्रत्येक प्राणी परमार्थत: उसी का रूप है किन्तु भ्रान्तिज्ञान से पृथक तथा अन्य सा प्रतीत होता है। वेदवाणी का यही संकेत है कि –

लोकानां व्यवहारार्थं अविद्या इयं विनिर्मिता।
एषा विमोहनी इत्युक्ता द्वैताद्वैतस्वरूपिणी।।

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।
अध्यात्मविद्यातपोमूलं एतद् ब्रह्मोपनिषदं परम्।।
यद् एतद् दृश्यते मूर्तं एतद् ज्ञानात्मिकं तव।
भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगत्रूपं अयोगिनः।।
ये तु ब्रह्मविदः विशुद्धसत्त्वः ते अखिलं जगत्।
ज्ञानात्मिकं पश्यन्ति त्वत्रूपं परमेश्वरम्।।

अर्थात् परमात्मा ने संसार में लोकव्यवहार के निमित्त ही इस अविद्या रूपी माया का निर्माण किया है। इसे विमोहनी शक्ति कहा गया है क्योंकि यह सत्य को छिपाकर भ्रान्तिज्ञान के द्वारा असत्य को सत्य का रूप दे देती है। जब तक आत्मा मायिक शक्तियों मन, बुद्धि तथा इन्द्रियादि के सहित शरीर से एकीकृत होकर मायिक गुणों की भोक्ता है तब तक वह इस अभेदज्ञान के कारण जीवात्मा कहलाती है और विशुद्ध चित्त में योगसिद्धि के द्वारा मायिक रचना से भिन्न अपने सर्वव्यापक स्वरूप के दर्शन के बाद भेदज्ञान प्राप्त कर लेती है तब अपने परमात्मस्वरूप में आ जाती है। यही आत्मसाक्षात्कार है। योगसिद्धि भी प्रकृति की ही देन है, अतःएव प्रकृति को द्वैत तथा अद्वैत स्वरूपिणी माना गया है। जिस प्रकार दूध में घी गुप्त रहता है और विशेष प्रयास से पृथक होता है, उसी प्रकार परमात्मा प्रकृति में गुप्त है, सर्वव्यापी है किन्तु अध्यात्मविद्या तथा क्रियायोग के उपाय से भेदज्ञान के द्वारा प्रकट होता है। योगसिद्धि के बिना मायालिप्त रहने से जगत के रूप में लीला होती है किन्तु विशुद्ध चित्त में प्रकृति के तत्वों से पृथक भेदज्ञान होने पर ब्रह्मवेत्ताओं को यह संसार परमात्मा का ही स्वरूप दिखाई देता है। अतःएव भ्रान्तिज्ञान के कारण ही जीवों का अस्तित्व है, अन्यथा सर्वत्र अनादि परमेश्वर ही व्याप्त है। जीवभाव अविद्या के कारण आत्मभाव पर विकल्पित सत्ता है, जैसा कि उपनिषद् का कथन है कि –

अनिश्चिता यथा रज्जुः अंधकारे विकल्पिता।
सर्पधारादिभिः भावैः तथात्मा विकल्पिता।।
आत्मा हि आकाशवत् जीवैः घटाकाशैरिवोदितः।
घटादिवच्च संघातैः जातौ एतत् निदर्शनम्।।
रूपकार्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै।
आकाशस्य न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः।।
एकस्तु सूर्यो बहुधा जलधारेषु दृश्यते।
आभाति परमात्मा च सर्वोपाधिषु संस्थितः।।

यदि अंधकार में कक्ष में पड़ी हुई सर्पाकार रस्सी का पूर्वज्ञान नहीं है तब स्वत: सर्पभय तथा भय से सम्बन्धित वृत्तियाँ चित्त में प्रकट हो जाती हैं। उसी प्रकार आत्मज्ञान न होने से अविद्या के अन्धकार में आत्मा में जीवात्मा प्रकट हो जाती है जिसके कारण सुख–दु:ख, रागद्वेष, मान–अपमान तथा काम–क्रोधादि अनन्त द्वन्द उत्पन्न हो जाते हैं। असंख्य घटों की रचना के कारण जिस प्रकार एक ही आकाश अनन्त घटाकाशों में विभक्त सा दिखाई देता है, भिन्न–भिन्न घटाकाशों का नाम, रूप तथा कार्य भी भिन्न–भिन्न होता है तथा उन घटाकाशों में स्थित पदार्थों के रूप, रस, गन्धादि गुणविकार भी भिन्न–भिन्न होते हैं किन्तु आकाश में न तो वह भेद है, न विकार है और न नाम–रूप तथा कार्य की भिन्नता होती है। इसी प्रकार एक ही आत्मा में स्थित अनन्त जीवात्मायें प्रकट होती हैं, उनमें सुखदु:खादि के विभिन्न गुणविकार होते हुए भी आत्मा अविकारी, अविभाजित तथा निर्लिप्त रहती है। जिस प्रकार एक ही सूर्य अनन्त जलाशयों में विभिन्न आकारों में प्रतिबिम्बित होता है, जलाशयों के पदार्थों के विकारों से प्रभावित होते हुए भी स्वयं अप्रभावित तथा प्रतिबिम्बों से भिन्न सा दीखने पर भी उनके अस्तित्व का आधार बना रहता है, इसी प्रकार परमात्मा भी सभी जीवात्माओं से सम्बंधित तथा उनका आधार होते हुए भी उनके विकारों से प्रभावित नहीं होता। अत: शास्त्रों का यह निष्कर्ष है कि अज्ञानवश जब तक जीवात्मा अपने को परमात्मा से पृथक मानती है तब तक कर्मबन्धन के कारण मायाजाल में फँसी रहती है। जीवात्मा प्राकृतिक तत्वों से एकात्मता के कारण अनादि काल से वासनाओं की दलदल में फँसी है, जब योगसिद्धि के द्वारा एकात्मता की भ्रान्ति नष्ट हो जाती है तब भेदज्ञान होने पर अपने विशुद्ध चित्त में परमात्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। जीवात्मा तथा परमात्मा छाया तथा धूप की तरह एक दूसरे से जुड़े हैं कि सर्वव्यापी धूप शरीर से बँधकर छाया बन जाती है किन्तु शरीर पारदर्शी है तब ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार सर्वव्यापी माया के मलावरण से दूषित चित्त के माध्यम से प्रकाशित होकर जीवात्मा बन जाता है और जब चित्त योगसिद्धि के द्वारा निर्मल होकर पारदर्शी हो जाता है तब परमात्मा अपने शुद्ध स्वरूप में रहता है, जैसा कि महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

''तदा दृष्टु: स्वरूपे अवस्थानम्।।''

(योगदर्शन)

''तत: पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसव: कैवल्यं चिते: स्वरूपस्थिति: वा।।''

अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है तथा माया के तीनों गुण पुरुषार्थशून्य होकर अपने कारण प्रकृति में लय हो जाते हैं और जीवात्मा कल्पित भाव को त्याग कर परमात्मस्वरूप में प्रकाशित हो जाती है। इसी स्थिति को कैवल्यावस्था अथवा स्वरूपस्थिति कहा जाता है। इस स्थिति से पूर्व मनोवृत्ति के रूप में चित्त में संसार प्रकाशित

रहता है, क्योंकि मन तथा बुद्धि के प्राण में लीन होने पर संसार चित्त में प्रकाशित नहीं होता जैसा कि अज्ञानावस्था में सुषुप्ति अथवा अचेतनावस्था में होता है तथा ज्ञानावस्था में सुषुप्ति अथवा अचेतनावस्था में होता है तथा ज्ञानावस्था में निरोध समाधि में होता है। विशुद्ध सतोगुण की ज्ञानावस्था में जब मन सहित ज्ञानेन्द्रियाँ तथा बुद्धि निष्क्रिय होती हैं तब वह स्वरूपावस्था कहलाती है। शास्त्रों में इस स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है कि –

यदि देहं प्रथक्कृत्य चिदि विश्रम्य तिष्ठति।
अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यति।।
संशान्तसर्वसंकल्पा या शिलावदवतिष्ठति:।
जागृतनिद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थिति: परा।।

अर्थात् यदि जीवात्मा की प्राकृतिक तत्वों यानि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ तथा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध विच्छेद होकर परमात्मस्वरूप में स्थित हो जाय तो उसी क्षण वह परम सुखी, परम शान्त तथा मायापाश से मुक्त हो जाती है तथा जीवभाव नष्ट हो जाता है। इस स्थिति में मन संकल्पविकल्परहित रहता है तथा बुद्धि ज्ञानचक्षु के रूप में प्रकाशित रहती है तथा उस पर न तो निद्रावरण रहता है और न मायावरण, केवल सच्चिदानन्दस्वरूप स्थिति रहती है। ऐसे महापुरुष परमात्मा का ही साकार रूप होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं यह सत्य स्वीकार किया है कि –

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थित:।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।

अर्थात् जो योगी सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित मेरे ही परमात्मस्वरूप में अपने स्वरूप को देखता है वह शरीर में रहते हुए भी मेरे ही सर्वव्यापी स्वरूप में रमण करता है। चराचर विश्व में जो प्राणात्मा है वह परमात्मा का ही सर्वव्यापक स्वरूप है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इसकी पुष्टि की है कि –

क्षेत्रज्ञमपि च मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो: ज्ञानं यत्तद् ज्ञानं मतं मम।।
सर्वत: पाणिपादं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जिततम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।

बहिरन्तश्च भूतानां अचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।
ज्योतिषामपि तज्जयोतिः तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।
उपदृष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहे अस्मिन् पुरुषः परः।।

अर्थात् समस्त शरीरों में जो प्राणात्मा है वह परमात्मा का ही चैतन्यस्वरूप है, क्योंकि मायानिर्मित शरीररूपी क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ के रूप में परमात्मा ने ही प्रवेश किया हुआ है। अतः क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ तथा उनके संयोग का ज्ञान ही परमात्मज्ञान है। दोनों के संयोग का लक्ष्य ही प्रकृति तथा पुरुष के स्वरूप एवं वैभव को जानना है। इस विज्ञान से योगी अनुभव करता है कि पुरुष ही सर्वत्र व्याप्त सर्वाधार है तथा ज्ञानस्वरूप है इसलिए बिना पैरों के चलता है, बिना हाथों के ग्रहण करता है, बिना आँखों के देखता है, बिना कानों के सुनता है, मानों कि उसके सर्वत्र हाथ–पैर हैं, सर्वत्र नेत्र तथा मुख हैं, सर्वत्र श्रोत्र हैं तथा सर्वत्र व्याप्त है। समस्त जीवों की इन्द्रियों की कार्यशक्ति है तथापि निर्लिप्त है। समस्त प्राणीमात्र का भरण–पोषण करने वाला है, परमात्मभाव में निर्गुण तथा जीवभाव में भोक्ता भी है। समस्त शरीरधारी जीवों के अन्दर भी है और बाहर भी फिर भी सूक्ष्म होने के कारण मायिक ज्ञानशक्तियों के लिए अविज्ञेय है। शरीरधारियों में बुद्धिभेद के कारण विभक्त सा है किन्तु परमार्थतः अविभक्त है, उन सब की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का निमित्त कारण भी वही पुरुष है। सूर्यादि ज्योतिमान प्राणियों की ज्योति भी वही पुरुष है, तेजस्वियों का तेज, ज्ञानियों का ज्ञान तथा ज्ञेय भी वही परमात्मा है, मायाधीश होने के कारण समस्त प्राणियों के चित्त का साक्षी, अनुमन्ता तथा भर्ता है और मायाधीन जीव के रूप में भोक्ता की लीला भी वही पुरुष कर रहा है। इसीलिए वेदशास्त्र का कथन है कि –

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः।।
यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेत् यः।
सर्वमेतत् विश्वं अधितिष्ठति एकः गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेत् यः।।
अपाणिपादो जवनोग्रहीता पश्यति अचक्षुः स श्रृणोति अकर्णः।

स वेत्ति वेद्यं न तस्यास्ति वेत्ता तमाहुः पुरुषं अग्रणीयं महान्तम्।।

अर्थात् कण-कण में व्याप्त परमात्मा ही विश्वरूप होकर प्रत्येक योनि के शरीरों का प्राणाधिपति है और हृदस्थ होकर सभी पदार्थों के स्वभाव को निष्पन्न करता है, परिणामी पदार्थों में गुणों के क्रमपरिणामों का नियमन करता है, अकेला ही सम्पूर्ण विश्व पर शासन करता है तथा सत्वादि गुणों को उनके नियत कार्यों में नियुक्त करता है। वह मायाधिपति पुरुषोत्तम है जो ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के बिना संसार के समस्त कार्यों का निष्पादन करता है। वह सर्वज्ञ है किन्तु स्वयं अविज्ञेय है तथा सर्वात्मा है। जीवात्मा तथा परमात्मा में जो भेद दिखाई देता है वह अविद्याजनित, कल्पित तथा मिथ्या है। इसी को भ्रान्तिज्ञान कहा जाता है, क्योंकि भ्रान्ति का नाश होते ही दोनों तात्विक रूप से एक हो जाते हैं। वेदवाणी इसकी पुष्टि करती है कि –

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशं अस्य महिमानमिति वीतशोकः।।
संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

अर्थात् जैसे एक ही सूर्यमण्डल में एक सूर्य है तथा जलाशयों में अनन्त सूर्य के प्रतिबिम्ब हैं, वैसे ही प्रकृति रूपी वृक्ष पर एक परमात्मा तथा अनन्त जीवात्माओं का वास है। मायिक वृक्ष के विषयभोग रूपी फल खाने से जीवात्मायें अविद्याभ्रमित होकर शोकातुर हैं। जब कोई जीवात्मा सत्यज्ञान के द्वारा परमात्मा का तथा उसके ऐश्वर्य का दर्शन कर लेती है तब वह भी परमात्मा के समान शोकरहित हो जाती है। यह मायानिर्मित संसार स्थूल तथा सूक्ष्म तत्वों की अपरा प्रकृति, चैतन्यरूप परा प्रकृति तथा दोनों के संयोजक परमात्मा के संयोग से अस्तित्व में है और परमात्मा इसका पालनकर्ता तथा नियन्ता है। जीवात्मा रूप मायाधीन आत्मा विषयभोगों में आसक्ति के कारण मायापाश में बँधी है किन्तु वही जब योगसिद्धि के द्वारा परमात्मा के स्वरूप का अनुभव कर लेती है तब वह भी सभी मायिक बन्धनों से मुक्त हो जाती है।

स्वास्थ्य

योग-आसन

पादांगुष्ठासन

विधि - पहले पैरों के पंजों पर साधारण भाव से उत्कटासन की तरह बैठ जाइये, उसके बाद अपना एक पैर उठाकर दूसरे पैर के जंघा एवं जानुप्रदेश के मध्य भाग में (पटपर) रख लीजिए व बैठने वाले पैर की एड़ी लिंगनाल के नीचे सीवनी पर जमाकर उसी पर सारे शरीर का वजन डालकर बैठ जायँ। इसके बाद अपने दोनों हाथ कटि प्रदेश अर्ध चन्द्राकार जमाकर छाती को आगे की ओर निकाल कर सामने देखते हुए सीधे बैठ जाइये। इसी को पादांगुष्ठासन कहते हैं। प्रथमाभ्यास में मेरुदण्ड को सीधा रखने के लिए यदि किसी दीवार आदि का अवलम्ब लेना पड़े तो अवश्य ले लेना चाहिए। इसमें कोई हानि नहीं, उसके बाद कुछ दिन के अभ्यास से यह स्वतः ही होने लगेगा।

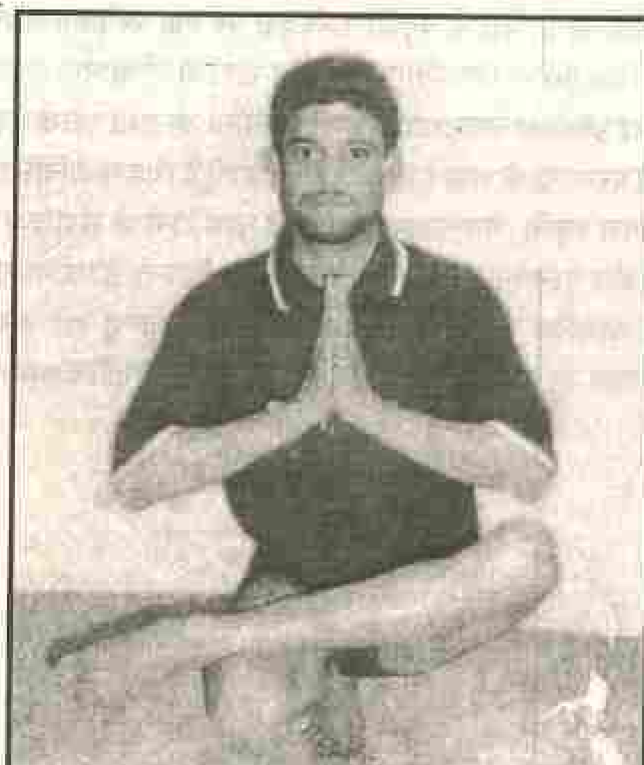

लाभ - यह आसन ब्रह्मचारियों एवं विरक्तों के लिए बहुत ही अभ्यसनीय है। इसके करने से वीर्य विकार नष्ट होते हैं। स्तम्भन बढ़ता है। उत्साह वृद्धि होती है व शरीर का संतुलन बढ़ता है।

• • •

अलुपुर में चन्दा

– जगदीश राए बंसल ''अधम'', नई दिल्ली, मो. : 9212434003

*(दिनांक 24.10.2012, दशहरा महोत्सव पर
अलुपुर धाम की एक कल्पित छवि)*

अलुपुर में चन्दा चमका, गुण गावें नर नारी
गुरु जी तुम्हें बार बार बलीहारी ।। (टेक)
ब्रह्मा और विष्णु तुम हो, साक्षात महेश्वरा हो
गंगा और यमुना तुम हो, त्रिवेणी मान सरोवर हो
अमृत धारा निकल रही है, हो... हो... हो...
अमृत धारा निकल रही है, डूबकी भक्तन लाई।
गुरु जी तुम्हें ....(1)

ये वृन्दावन सी कुन्ज गली में, बैठे हैं बृजवासी
छम–छम पायल बाज रहे, नाच रहे कैलाश वासी
चार धाम के दर्शन हैं ये, हो... हो... हो...
चार धाम के दर्शन हैं ये, महिमा कही ना जाई
गुरु जी तुम्हें ....(2)

गंगा सागर नीलकण्ठ, और पुरी का है धाम यहीं
हे रामेश्वर, हे कालेश्वर, हो बद्रीनारायण तुम्हीं
शीतल मन्द सुगन्ध है बहती, हो... हो... हो...
शीतल मन्द सुगन्ध है बहती, ये बाँका बंशी बजाई।
गुरु जी तुम्हें ....(3)

देवगण भी अवसर पा कर, भूतल पर आए हैं
धूम–धाम दशहरे की देखो, ये दूध फूल चढ़ाए हैं
केहि विध स्तुति करूं गुरु की, हो... हो... हो...
केहि विध स्तुति करूं गुरु की, अधम मति नांही।
गुरु जी तुम्हें ....(4)

●●●

अल्प व्यस्क बालक की प्राण रक्षा

(अद्‌भुत कृपा प्रसंग)

– केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

सम्भवत: यह कृपा प्रसंग सन् 1980 के दशक में प्रारम्भ की ही है। सहारनपुर जनपद के हमारे एक गुरुभाई श्री सिकन्दर राय अपनी धर्मपरायणा पत्नी और बालक रवि राय के साथ महाप्रभु जी के अवतारोत्सव चैत्र सुदी सप्तमी, अष्टमी और नवमी उत्सव का लाभ उठाने सहारनपुर से योग प्रशिक्षण श्री सिद्धगुफा सवांई धाम की यात्रा आरम्भ किये। इन्होंने 1970 के दशक में हमारे गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा प्राप्त की है। श्रद्धा की कमी या आलस्य की अधिकता के कारण ये इसके पूर्व सवाँई धाम नहीं जा सके। अपनी इस यात्रा के पड़ाव में ये मथुरा के प्लेटफार्म पर खड़े थे। इन्हें ट्रेन से मथुरा से आगरा आना था और आगरा से सवाँई धाम पहुँचने का प्रोग्राम बना चुके थे। मथुरा रेलवे स्टेशन पहुँचने पर रेलवे इनक्वारी में पता किये, तो पता चला कि एक सुपरफास्ट ट्रेन आ रही है जो मथुरा से खुलने के बाद आगरा ही रुकेगी। ये सुपरफास्ट ट्रेन का टिकट ले लिये। टिकट लेकर जब ये प्लेटफार्म की तरफ गये तो पता चला कि चन्द मिनटों में गाड़ी प्लेटफार्मो पर आ गयी। इनके प्लेटफार्म नम्बर एक पर पहुँचते–पहुँचते वह सुपर फास्ट ट्रेन प्लेटफार्म नम्बर चार पर आ गयी। इन्होंने सोचा कि सीढ़ीयों के सहारे प्लेटफार्म नम्बर एक से प्लेटफार्म नम्बर चार पर जायेंगे तो हम लोग उस सुपरफास्ट ट्रेन को पकड़ नहीं पायेंगे। ये ट्रेन पकड़ने की नीयत से रेलवे पटरियों को पार करके प्लेटफार्म नम्बर चार पर पहुँच गये। जब ये दोनों पति–पत्नी प्लेटफार्म नम्बर चार पर चढ़ गये तब इन्हें याद आया कि लड़का तो नीचे ही रह गया प्लेटफार्म पर नहीं चढ़ पाया। प्रत्यक्ष दर्शियों ने बताया कि लड़का सुपर फास्ट ट्रेन के लाइन पर ही खड़ा था। यह बात सुनकर ये दम्पति जोर–जोर से चिल्लाकर रोने लगे, एवं कहने लगे कि ऐसी तीर्थ यात्रा से क्या फायदा जिसमें कि हमारा लड़का ही मर जाय। ये रोते रहे और प्रभु जी को कोसते रहे कि हमारा लड़का जीवित नहीं बचा तो इसके बाद हम लोग फिर सवाँई धाम नहीं आयेंगे और आपका तथा महाप्रभु जी की आरती पूजन भी नहीं करेंगे। इसी समय वह सुपर फास्ट ट्रेन आगरा से चल दी पूरी गाड़ी गुजर जाने पर इन लोगों ने देखा कि इनका लड़का इसी लाइन के बीच खड़ा है, जिस लाइन से सुपरफास्ट ट्रेन गुजरी है। पति ने दौड़कर बच्चे को पकड़ा और उसे लेकर प्लेटफार्म नम्बर चार पर चढ़ गया। स्टेशन पर उपस्थित पूरा यात्री समुदाय यह आश्चर्य जनक सत्य घटना देखकर बार–बार यही सोच रहा था कि सुपर फास्ट ट्रेन के आने के बाद यह बालक बचा कैसे? वैसे इस घटना का रहस्य किसी के समझ में नहीं आया कि योगेश्वर द्वय ने इस बालक की रक्षा कैसे की है। बालक को सुरक्षित एवं सकुशल पाकर ये लोग बालक से लिपट कर रोने लगे। हमारे श्री

गुरुदेव भगवान और दादा गुरुदेव के लिए जिन अपशब्दों का प्रयोग किया था इसके लिए बार–बार मन ही मन क्षमा प्रार्थना की। प्रार्थना करते समय इस दम्पति के नेत्रों से बराबर अश्रुपात होता रहा।

तदन्तर डेढ़ घण्टे बाद मथुरा जंक्शन से दूसरी ट्रेन पकड़कर आगरा शहर और वहाँ से टेम्पो और बस से श्री सवाई धाम पहुँचे। उस समय रात्रि के साढ़े आठ (08:30) बज रहे थे। श्री गुरुदेव भगवान अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की सायं कालीन आरती के लिए ॐ शब्द का उच्चारण कर रहे थे। वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने गुफा के सामने नीम के पेड़ के पास से जमीन पर लेट कर साष्टाङ्ग प्रणाम किये और आरती में उपस्थित रहे। आरती के पश्चात ये दम्पति आराध्यदेव से एकान्त में यह कृपा प्रसंग सुनाना चाहते थे। गुरुदेव भगवान की व्यस्तता के कारण उस रात उन्हें ऐसा करने का अवसर नहीं मिल पाया। दूसरे दिन प्रातः काल लगभग साढ़े पाँच बजे (05:30) ये दम्पति स्नान वगैरह करके गुरुभवन में पहुँच गये एवं आराध्यदेव को प्रणाम करके इस चमत्कारिक घटना का पूरा विस्तार से वर्णन सुनाये। उनकी बातों को गुरुदेव भगवान ने अच्छी प्रकार से सुना एवं फिर मुखार विन्द से कहा कि श्री प्रभु जी अपने बच्चों को हर प्रकार से सम्भाल करते रहते हैं। उनकी कृपा वृष्टि हरदम अपने प्रत्येक बच्चों पर बनी रहती है। तुम लोगों को भी उनके चरण कमलों का चिन्तन स्मरण करते रहना चाहिए। यदि कोई साधक नित्य नियम से आरती पूजा के बाद प्रातः पाँच बजे से सात बजे तक अपने गुरुमंत्र का जाप करेगा तो उसका सभी काम चाहे लौकिक हो या पारलौकिक होते जायेंगे। इसके बाद श्री मुख ने आदेश दिया कि जाओ लल्ला! गौशाले के बगल वाले हाल में अपना सामान रखो और वहीं निवास करते हुए उत्सव का आनन्द लो तथा पुण्य अर्जित करो।

इस रहस्य से पर्दा नहीं हट पाया कि श्री गुरुदेव भगवान ने उस बालक की प्राण रक्षा कैसे की। इस विषय पर सोचना भी व्यर्थ ही है कारण यह है कि हमारे श्री गुरुदेव भगवान परात्पर सत्ता की सबसे ऊपरी शिखर हैं चर–अचर सब पर उनका पूरा–पूरा अधिकार है।

अपने श्री गुरुदेव के प्रति निम्न प्रार्थना के साथ यह कृपा प्रसंग यहीं विश्रामित है :–

प्रभु रामलाल के थाती तुम, अध्यात्म जगत के नायक हो।
हम बुरे भले जैसे भी हैं, हम सबके तुम अभिभावक हो।।
आशीष तुम्हारा मिलता है, खुशियों से दिल भर जाते हैं।
जब करुण कृपा हो जाती है, सारे संकट टर जाते हैं।।
तुम दीन दुःखी के प्रतिपालक, श्री शिव सम अवढ़र दानी हो।
तुम योग ज्ञान के मूल स्वयम्, सब करते मगर अमानी हो।।

●●●

मैं ईश्वर हूँ...

— आशुतोष मिश्रा

मैं ईश्वर हूँ, भार्या बनी प्रकृति है
जो रची बसी है मुझमें।
जहाँ–जहाँ गयी प्रकृति की छाया
वहाँ–वहाँ रची गयी एक नयी सृष्टी

उस सृष्टी में भी हूँ मैं,
आज सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड यज्ञाग्नि का रूप
धर लिया, मेरा निवाला बनने के लिए
कै पतंगा की भाँति खिंचे चले आ
रहे त्रिदेव, हर सृष्टी के देव अपनी
बारी की प्रतिक्षा कर रहे निवाला बनने को

हर आहूती के बाद प्रकृति भी
लय–भूत हो रही मुझमें
हर रागियों को मेरा निवाला
बनना ही पड़ेगा, हर प्रकृति को यज्ञ
का भाग बनना ही पड़ेगा।
तभी यज्ञाग्नि होवेगी शान्त, तभी प्रकृति
पुन: लय–भूत होवेगी मुझमें,
और पुन: लय भूत होवेगी मुझमें और
पुन: करेगी क्रीड़ा मेरे साथ

हर क्रीड़ा के साथ करोड़ों सृष्टी
उदय होवेगी औ हर पद के थाप
से यज्ञ का भाग बन निवाला बनेंगे
इस क्रीड़ा का वही साक्षी बनेगा
जो लय–भूत हो मुझमें अथवा
जो मेरा निवाला बन मुझमें मिल जाय

●●●

हमारा लक्ष्य

योग के जिस मार्ग का यहाँ अवलम्बन किया जाता है उसका हेतु अन्य योगमार्गों से भिन्न है। इस योगमार्ग का लक्ष्य केवल सामान्य सांसारिक देहात्मभाव से ऊपर उठकर परमात्म भाव को प्राप्त होना ही नहीं है, प्रत्युत उस परमात्म भाव के विज्ञान को इस मन, बुद्धि, प्राण और जीवन के तमस् में ले आना, इनको रूपान्तरित कर देना, इनमें भगवान् को प्रकट करना और जड़ पार्थिव प्रकृति में दिव्य जीवन निर्माण करना इसका लक्ष्य है। यह बड़ा ही दुर्गम लक्ष्य और कठिन योग साधन है; बहुतेरों को, या प्रायशः सभी लोगों को यह असम्भव ही प्रतीत होगा। सामान्य, अनभिज्ञ सांसारिक देहात्मभव में अज्ञान की जो क्रिया शक्तियाँ जमकर डटी हुई हैं वे इसके विरुद्ध हैं और इसका होना ही नहीं मानतीं और इसके होने में बाधा ही डालने का यत्न करती हैं और साधक स्वयं भी देखेगा कि अपने ही मन, प्राण और शरीर इसकी प्राप्ति में कितनी जबर्दस्त रुकावटें डालेंगे। यदि तुम इस लक्ष्य को सर्वांतःना स्वीकार कर सको,

इसके लिए सब कठिनाइयों का सामना करने को तैयार हो, पीछे जो कुछ हुआ उसे और उसके बन्धनों को पीछे ही छोड़ दो और इस भगवद्भाव की सम्भावना के लिए सब कुछ छोड़ देने और चाहे जो हो जाय, इसके पीछे लगाने को प्रस्तुत हो, तो ही तुम यह आशा कर सकते हो कि इसके पीछे जो महत् सत्य है उसका तुम्हें साक्षात्कार होगा। इस योग की साधना का कोई बँधा हुआ मानसिक अभ्यास क्रम या ध्यान का कोई निश्चित प्रकार, कोई मन्त्र या तन्त्र नहीं है; यह साधना आरम्भ होती है साधक की आरोहणेच्छा से; उसके अपने ऊपर या अन्दर आत्मध्यान से; अपने आपको भगवत्प्रभाव की ओर उस भगवच्छक्ति की ओर जो हमारे ऊपर है तथा उसके कार्य की ओर और उस भगवत्सत्ता की ओर जो हमारे हृदय में है-अपने आप को खोल देने से; और इन सब बातों के विरुद्ध जो-जो कुछ है उसका त्याग करने से। श्रद्धाविश्वास, आरोहणेच्छा तथा आत्मसमर्पण के द्वारा ही इस प्रकार अपने आप को भगवत्सत्ता की ओर खोल देना होता है।

-महर्षि अरविन्द

◆ ◆ ◆

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

समानी व आकूतिः समना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

(ऋग्वेद 10/191/4)

आप सब मानवों की आकृति अर्थात् संकल्प निश्चय प्रयत्न एवं व्यवहार समान-समभाव वाले सरल-कापट्यादि दोषरहित, स्वच्छ रहें एवं आप सब मानवों के हृदय भी समान-निर्द्वन्द्व, हर्ष-शोक रहित सम्भाव वाले रहें तथा आज सब मानवों का मन भी समान सुशील, एक प्रकार के ही सद्‌भाव वाला रहे। जिस प्रकार आप सबका शोभन (अच्छा) साहित्य (सहभाव) धमार्थ आदि का समुच्चय सम्पादित हो, उस प्रकार आपके आकृति-हृदय एवं मन हों।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा